पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

AUGUST 2026
अंक - 09

समाज में बढ़ते बलात्कार का कारण वास्तविक या कृत्रिम 3

497

दिल्ली मे बलात्कार और महिला आक्रोष 4

प्रकाशन की तिथि - 16-08-2026 पोस्ट की तिथि - 31-08-2026

सिंहावलोकन

12 **प्रश्नोत्तर**

14 **नई समाज व्यवस्था**

16 FCRA **का विरोध क्यों? विदेशी हस्तक्षेप से आजादी के बाद अब विदेशी धन से कैसी आजादी? ज्ञानेन्द्र आर्य**

19 **जीवन पथ**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबीी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

समाज में बढ़ते बलात्कार का कारण वास्तविक या कृत्रिम

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

कुछ निष्कर्ष स्वयं सिद्ध हैं-

(1)महिला और पुरुष कभी अलग-अलग वर्ग नहीं होते। राजनेता अपने स्वार्थ के लिए इन्हें वर्गों में बांटते हैं।

(2)महिला हो या पुरुष, सबके मौलिक और संवैधानिक अधिकार समान होते है। इनमें कोई भेद नहीं हो सकता। सामाजिक अधिकार अलग-अलग होते है क्योंकि दोनों की प्राकृतिक संरचना स्वभाव तथा सक्रियता में फर्क होता है।

(3)सेक्स की इच्छा दोनों में समान होती है, कम या अधिक नहीं।

(4)प्राकृतिक संरचना के आधार पर पति को आक्रामक और पत्नी को आकर्षक होना चाहिए।

(5)स्त्री और पुरुष के बीच एक दूसरे के प्रति आकर्षण श्रृष्टि की रचना के लिए अनिवार्य होता है। विशेष परिस्थितियों में ही उसे नियंत्रित या संतुलित करने का प्रयास किया जा सकता है।

(6) किसी भी रुप में बलात्कार अपराध होता है। उसे रोकने का अधिकतम प्रयत्न होना चाहिये।

किसी पुरुष द्वारा किसी महिला के साथ बलपूर्वक किया गया सेक्स संबंध बलात्कार होता है। बलात्कार में शक्ति प्रयोग अनिवार्य शर्त होती है। भारत में बलात्कार की गलत परिभाषा प्रचलित की गई है। स्वतंत्रता के बाद बलात्कारों में धीरे-धीरे वृद्धि हो रही थी। पिछले कुछ वर्षो से बहुत तीव्र गति से बलात्कार की घटनाएँ भी बढ रही है और मुकदमें भी। समझ में नहीं आता कि एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत के पुरुषो में सेक्स की क्षमता घट रही है दूसरी ओर बलात्कारों का बढ़ना सिद्ध करता है कि पौरुषत्व लगातार बढ रहा है। मुझे लगता है कि हमारी राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था बलात्कार वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान कर रही है न कि पुरुषों का बढ़ता पौरुषत्व। वर्तमान में जो बलात्कार की परिभाषा बनाई गई है वह परिभाषा ही बलात्कार की बढ़ती घटनाओं का प्रमुख कारण है। बलात्कार की सबसे अच्छी परिभाषा डॉ0 राममनोहर लोहिया ने दी थी जिसे कभी नहीं माना गया और वर्तमान समय तो उस परिभाषा के ठीक विपरीत दिशा में तेजी से बढ़ता जा रहा है। हम इस परिभाषा परिवर्तन के परिणाम भी देख रहे हैं। बलात्कार के साथ-साथ हत्याओं की भी बाढ़ सी आ गई है। जेलों में भीड़ बढ़ती जा रही है। बलात्कार के मुकदमें भी बढ़ते जा रहे हैं। पुलिस ओवर लोडेड हो गई है। कानून जितने कठोर हो रहे हैं उतनी ही अधिक बलात्कार और हत्या की घटनाएँ बढ़ रही हैं। आवश्यक है कि बलात्कार वृद्धि के कारणों पर गंभीरता से विचार किया जाये। सेक्स एक प्राकृतिक भूख है और उसे बलपूर्वक नहीं दबाया जा सकता । न प्राचीन समय में ऐसा संभव हो पाया न ही आज हो पा रहा है न भविष्य में हो पायेगा। भूख और पूर्ति के बीच दूरी जितनी बढ़ेगी उतनी ही अपराध की स्थितियॉ पैदा होती हैं। पुराने जमाने में भूख लगती थी सोलह वर्ष में और विवाह होता था चौदह वर्ष में। बलात्कार मजबूरी नहीं मानी जाती थी। वर्तमान ना समझ नेताओं के समय में इच्छाएं सोलह की जगह पन्द्रह में पैदा होने लगी तो विवाह की उम्र इक्कीस कर दी गई। पुराने जमाने में विवाह के बाद भी यदि किसी परिस्थिति में मजबूरी हो तो पुरुषों के लिए वैश्यालय थे। वर्तमान समय में विवाह की उम्र बढ़ा दी गई तो दूसरी ओर वैश्यालयों, यहॉ तक कि बार बालाओं तक को रोकने के प्रयास शुरु हो गये। प्राचीन समय में महिला और पुरुष के बीच दूरी घटनी चाहिए या बढनी चाहिए इसमें सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं था। यह व्यक्ति परिवार और समाज पर निर्भर करता था। अब सरकार इस पर पूरी ताकत लगाकर इस दूरी को घटाने का प्रयास कर रही है। बलात्कार बढ़ रहे है और स्त्री पुरुष के बीच दूरी निरंतर घटाई जा रही है। पुराने जमाने में परिवार और समाज का अनुशासन था। अब वर्तमान समय में परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को जान बूझकर कमजोर किया गया। पुराने जमाने में छेड़छाड़ की घटनाओं को विशेष परिस्थिति में ही कानून की शरण में लिया जाता था अन्यथा ऐसी बाते सामाजिक स्तर पर निपटा ली जाती थी या छिपा ली जाती थी। अब ऐसी घटनाओं को बढ़ा चढ़ा कर प्रचारित करना एक फैशन के रुप में बन गया है। महिला सशक्तिकरण का नारा तो इस अव्यवस्था में और अधिक सहायक हो रहा है। चरित्रहीन महिलाएँ इसका ज्यादा दुरुपयोग करने लगी हैं। प्राकृतिक तौर पर पुराने जमाने में माना जाता था कि स्त्री और पुरुष में से किसी एक को स्वाभाविक रुप से दोषी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दोनों के बीच इच्छाओं की मजबूरी समान होती है। वर्तमान समय में हर पुरुष कोअपराधी सिद्ध करने की होड़ मची है। मेरा स्वयं का अनुभव है कि जो महिलाएँ भारत की महिलाओं का संवैधानिक पदों पर प्रतिनिधित्व कर रही है उनमें से अनेक ऐसी है जिनका व्यक्तिगत जीवन कलंकित रहा है। उनमें से कई तो किसी बड़े राजनेता के साथ जुड़ी भी रही है और उन्हें उंचे पद दिलाने में यह जुडाव महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। संदेह होता है कि यदि महिलाओं के विषय में निर्णय करने वाली महिलाओं में ऐसी भी महिलाए होंगी

तो बलात्कार बढेंगे ही। ऐसे महिला और पुरुष अपने लिए तो चोर दरवाजे की व्यवस्था खोज लेते है और दूसरे परिवारों की पारिवारिक एकता को छिन्न-भिन्न करने के लिए कानून बनाते रहते है। मैंने तो यहॉ तक सुना है कि विवाहित पति-पत्नी के बीच बिना अनुमति के शारीरिक संबंध बनाने को भी बलात्कार घोषित करने की चर्चाए चल रही हैं।

बलात्कार भी दो परिस्थितियों में होता है- 1. आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 2. इच्छाओं की पूर्ति के लिए। यदि कोई सेक्स की भूख से व्याकुल व्यक्ति बलात्कार करता है तो वह अपराध होते हुए भी उस अपराध से छोटा माना जाना चाहिए जो इच्छाओं की पूर्ति के लिए बलात्कार होता है। आवश्यकताएँ सीमित होती है और इच्छाएं असीमित होती है। वर्तमान कानून इन दोनों के बीच अंतर नहीं कर पाता। स्त्री और पुरुष के बीच प्राकृतिक स्थितियॉ ऐसी है कि दोनों के बीच के आकर्षण को निरुत्साहित करना खतरनाक होगा। उसे विशेष परिस्थितियों में ही अनुशासित या शासित करना चाहिए। सरकार का कानून इतना ज्यादा संवेदनषील बना दिया गया है कि किसी प्रकार का निवेदन करना भी बड़े अपराध में शामिल किया जा सकता है। मेरे विचार से इस प्रकार के कानून धूर्त महिलाओं को ब्लैकमेल करने के अवसर देते है। मैं मुलायम सिंह जी या शरद यादव के विचारों को सुनता रहा हूॅ। भले ही और लोग उन्हें न सुने।

बढ़ते बलात्कार समाज के लिए एक कलंक है। उन्हें रोकने के लिए चौतरफा प्रयत्न करने होंगे। हमें यह ध्यान रखना होगा कि बलात्कार रोकने के नाम पर स्त्री और पुरुष के बीच के आकर्षण पर विपरीत प्रभाव न पड़े। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि कोई व्यक्ति सेक्स की भूख के कारण मानसिक रोगी न हो जाये या कोई अन्य गंभीर अपराध न कर बैठे। बलात्कार रोकने के नाम पर अनावष्यक कानूनी छेड़छाड़ बहुत घातक है। विवाह की उम्र को युक्ति संगत किया जाये। वैश्यालयों को पूरी तरह खोल दिया जाये। बलात्कार के अतिरिक्त अन्य कानूनों में संषोधन किये जाये। परिवार और समाज को भी अनुशासन बनाने में सहयोगी माना जाये। जो महिलाए परम्परागत तरीको का पालन करती है उनके साथ छेड़छाड़ को अधिक गंभीर माना जाये उनकी तुलना में जो आधुनिक तरीको से खतरे उठाती है। साथ ही यह भी प्रयत्न किया जाये कि बलात्कार के नाम पर धूर्त महिलाए समाज को ब्लैकमेल करने में सफल न हो सके। बलात्कार का रोका जाना जितना जरुरी है उतना ही जरुरी यह भी है कि बलात्कार के नाम पर जेलों में भीड़ बढ़ाने की प्रवृत्ति प्रोत्साहित न हो। वर्तमान सरकार नरेंद्र मोदी मोहन भगवत योगी आदित्यनाथ सरीखे उच्च समझदार लोग मिल कर चला रहे हैं । हम लोगों की भी उसमे महत्वपूर्ण भूमिका है । सब लोग समस्या को भी अच्छी तरह समझ रहे हैं और समाधान भी जानते हैं लेकिन सब कुछ समझते हुए भी हमारे समक्ष कुछ मजबूरियाँ हैं

1 वर्तमान सरकार के पास सविधान संशोधन का दो तिहाई बहुमंत नहीं है

2 वर्तमान समय में विपक्ष इतना कमजोर नहीं है की उसकी अनदेखी कर दी जाए

3 वर्तमान समय में साम्यवादियों और सांप्रदायिक मुसलमानो का एक मजबूत गठजोड़ बना हुआ है जिसका विपक्ष के साथ सीधा तालमेल है

इन परिस्थितियों को देखते हुए यदि हमने महिलाओं बच्चों दलितों या आदिवासी संगठनो के साथ जरा भी छेड़छाड़ की तो सरकार भी संकट में आ जाएगी और हिन्दू समाज भी परेशानी में पड़ जाएगा । इसलिए परिस्थितियों के कारण सरकार कोई पहल नहीं कर पा रही है ।

दिल्ली मे बलात्कार और महिला आक्रोष

कुछ वर्ष पहले दिल्ली मे एक सामूहिक बलात्कार की घटना हुई। बलात्कार का तरीका और उसके बाद लडकी और उसके साथी को चलती गाडी से नीचे ढकेलने की घटना अत्यन्त अमानवीय थी। घटना के पूर्व इन्ही अपराधियों ने एक व्यक्ति से आठ हजार रूपये लूटकर उसे भी चलती गाडी से धक्का दे दिया था। इसी दिन दिल्ली के आस पास ही एक महिला ने अपने जीवित पति के ग्यारह टुकडे करके लाश के टुकडे बाहर फेंक दिये थे। दोनो घटनायें एक ही दिन की है।

बलात्कार प्रकरण पूरे भारत मे एक तूफान के रूप मे आया। देशभर की आधुनिक महिलाओं ने पहल करके इस घटना पर रोष व्यक्त किया। संसद में जमकर हंगामा हुआ जिसमे सभी राजनैतिक दलों की महिला सांसदो ने एक से बढकर एक तरीके से अपना आक्रोष व्यक्त किया। कोई भी सांसद महिला किसी अन्य से जरा भी पीछे नहीं दिखना चाहती थी। सुषमा स्वराज ने मांग की कि अपराधियो को जल्दी से जल्दी फांसी दी जाये। जया बच्चन अपनी भावनाएं व्यक्त करते समय फफक फफक कर रो पडीं। सोनिया गाँधी ने तत्काल ही मुख्यमंत्री को एक कडा पत्र लिखा और पीडित लडकी से मिलने गई। गिरजा व्यास ने भी बहुत ही मार्मिक भाषण दिया। न्यायपालिका भी इस घटना मे पीछे नही रही। न्यायाधीष ज्ञानसुधा जी ने ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के उपाय करने की बात कही। उच्च न्यायलय ने स्वतः संज्ञान लेते हुए पूरे मामले की स्वतः निगरानी करने की बात कही। मीडिया जगत भी बहुत आगे आगे दौड रहा था। दिन भर लाइव चर्चा चलती रही। नीरजा चौधरी जी एक प्रतिनिधि मंडल के साथ मुख्यमंत्री से मिलकर अपने सुझाव दे आई और अपना निवेदन भी कर आई। मुख्यमंत्री ने फास्ट ट्रैक कोर्ट की घोषणा कर दी। राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष ममता शर्मा ने बे सिर पैर का सुझाव दिया कि बलात्कार के

अपराधियों को नपुंसक बना दिया जाय तथा फाँसी भी दी जाय। सरकार के अनेक मंत्रालयों ने अपने अपने तरीके से प्रशासनिकरोकथाम के उपाय किये। मानवाधिकार संगठनो ने जंतर मंतर पर नाटक प्रस्तुत करके समाज में जागरूकता की बात की। टीम अरविन्द केजरीवाल ने भी प्रदर्शन करके अपनी भावनाएं रखीं। भाजपा की महिला सांसदो ने कुछ पुरूष सांसदो के साथ जंतर मंतर पर प्रदर्शनकिया और अपराधियों को फाँसी देने की माँग की। किरण बेदी ने भी इस संबंध मे अपना पक्ष और सुझाव रखे। दिल्ली के बाहर मुबईं मे तथा अन्य शहरों मे भी आवश्यक हुए। अधिकांशलोगो ने अपराधियों को फाँसी तक देने की माँग की। अधिकांश लोगो ने बलात्कार के विरूद्ध कठोर कानून बनाने की मांग की। अधिकांशलोगो ने पुलिस विभाग की निष्क्रियता के विरूद्ध जमकर गुस्सा निकाला। उच्च न्यायलय ने भी पुलिस विभाग से प्रश्न पूछा कि गाडी में परदे लगे थे लाइट बुझी थी गाडी के रास्ते मे पाँच चेक पोस्ट पार हुए फिर भी गाडी कहीं रोकी क्यों नही गई। अनेक शहरोंमे कैन्डिल मार्च निकाला गया जिसमें महिलाओं की संख्या बहुत ज्यादा थी। कई जगह प्रार्थनाएं भी हुऱ्इ्र और यज्ञ भी हुए। सारे देशमे बलात्कार के विरूद्ध एक तूफानी आक्रोष दिखा। ऐसा महसूस हुआ जैसे सम्पूर्ण भारत बलात्कार के विरूद्ध डटकर खडा हो गया है। अब भविष्य में यदि बलात्कार समाप्त नहीं भी होंगे तो कम तो जरूर हो जायेगें। अब न्यायपालिका विधायिका पुलिस़ पत्रकारिता. स्वयंसेवी संगठन मानवाधिकार संगठन. अधिवक्ता गण आदि सभी समूह बलात्कार के विरूद्ध ईमानदारी से एकजुट हो गयें हैं। अब बलात्कार तो इन संगठित ताकतो के समक्ष टिक नहीं सकता।

पूरे देशमें जो आक्रोष दिखा उससे ऐसा लगा जैसे ऐसी घटना भारत मे पहली बार हुई हो जिसने बलात्कार और हिंसा के सम्बन्ध मे भारत के उज्जवल रेकार्ड को कलंकित कर दिया हो। जबकि भारत मे सिर्फ दिल्ली मे ही पिछले दस वर्षो मे बलात्कार या बलात्कार और हत्या की घटनाऐं आठ गुनी तक बढ गई हैं। दिल्ली की आबादी दस वर्षो मे मात्र दो गुनी हुई और बलात्कार हत्या आठ गुनी। देशके अन्य भागों मे भी यह वृद्धि दर लगभग ऐसी ही है। भारत का जो क्षेत्र पारंपरिक जीवन जी रहा है और अल्पषिक्षित अविकसित है वहाँ ऐसी बलात्कार वृद्धि का प्रतिशत कम है और विकसित षिक्षित आधुनिक क्षेत्रों मे ज्यादा। यह कोई अप्रत्याषित नई घटना नहीं थी। दूसरी बात यह भी थी कि बलात्कार करने वाले कोई ऐसे स्थापित व्यक्तित्व नही थे जिन्होने बलात्कार करने और छिपाने में अपने राजनैतिक आर्थिक प्रशासनिक शक्ति का उपयोग किया हो। बलात्कार करने वाले सबके सब सामान्य स्तर के आपराधिक प्रवृत्ति के लोग थे जो इस तरह के कृत्यो मे पूर्व मे भी पकडे जाकर न्यायालयों से छूटते रहें हैं। विदित हो कि इनसे भी कई गुना ज्यादा खूंखार अपराधी जिस पर हत्या जैसे अपराधों के सैकडों प्रकरण हैं वह इसी दिन एक नागरिक मुठभेड मे मारा गया किन्तु उसके इतने गंभीर अपराधो की चर्चा तक नही हुई। फिर क्या कारण रहा कि यह प्रकरण इतना ज्यादा उछला?

मैने इस प्रकरण को कई तरह से समझा। सभी राजनैतिक दल, मीडिया कर्मी सामाजिक संस्थाओं के लोग अपने अपने महिला सहयोगियों को ही आगे क्यों कर रह थे? क्या यह प्रकरण महिलाओं पर पुरूषों का अत्याचार था या अपराध शरीफों पर। एक प्रश्न बार बार उठाया गया कि ऐसी बलात्कार की घटनाऐं सिर्फ महिलाओं के विरूद्ध ही क्यों होती है? मै नही समझा कि प्रश्नकर्ताओ का आषय क्या है? बलात्कार का तो प्राकृतिक स्वरूप ही महिलाओं तक सीमित है। फिर ऐसा प्रश्नक्यों? हमेशा ही युद्ध के समय भी पुरूष मारे जाते रहें हैं और महिलायें बलात्कार का षिकार हुई हैं। आज भी पुरूषों के साथ होने वाले अपराधों का चरित्र कुछ भिन्न तथा महिलाओं के विरूद्ध अपराधो मे बलात्कार का उपयोग होता है। भारत पाकिस्तान दंगो या गुजरात दंगो का इतिहास भी ऐसा ही एकपक्षीय रहा है। इस घटना को महिलाओं के विरूद्ध पुरूषों का अत्याचार स्थापित करके महिला पुरूष के बीच के सांमजस्य को वर्ग संघर्ष मे बदलना तो इन सबका उद्देश्य नही था? कहीं ऐसा तो नही था कि बढते हुए बलात्कार मे अपनी अक्षमता के संभावित छींटों के डर से विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, मीडिया, समाजसेवी, मानवाधिकार संगठन पहले ही जोर जोर से चिल्ला चिल्ला कर अपना दामन बचाते रहे हों? कहीं ऐसा तो नही कि दिल्ली के संभावित विधानसभा चुनावों के लाभ हानि के गणित का आंकलन करके राजनैतिक दल आक्रमण और बचाव के मार्ग खोजते रहे हों? क्योंकि सबका निषाना या तो शीला दीक्षित थीं या दिल्ली पुलिस। ऐसा भी संभव है कि ये लोग भारत मे बढ रही प्रमुख ग्यारह समस्याओं मे से बारी बारी से एक एक को हाई लाइट करने की खानापूर्ती करती रहे। विदित हो कि भारत की ग्यारह समस्याओं मे (1) चोरी डकैती लूट(2) बलात्कार (3) मिलावट कमतौल (4) जालसाजी धोखाधडी (5) हिंसा, आतंकवाद (6) भ्रष्टाचार (7) चरित्र पतन (8) साम्प्रदायिकता (9) जातीय कटुता (10) आर्थिक असमानता (11) श्रम शोषण शामिल हैं। हमारे नेता कभी मिलावट खोरो को फाँसी दो का नारा उछालते है तो कभी आतंकवादी अफजल गुरू को । कभी ये साम्प्रदायिकता के विरूद्ध एक जुट होते है तो कभी भ्रष्टाचार करने वालों को फाँसी पर चढाने की बात होती है। इसी क्रम मे इस बार बलात्कार का नम्बर आ गया हो । वैसे भी इस हो हल्ले मे एक स्वर से फांसी की बात उठी किन्तु फाँसी विरोधी गु्रप बिल्कुल चुपचाप किनारे छिपा रहा। कविता श्रीवास्तव प्रायः बहुत जोर से फाँसी के विरूद्ध बोलती हैं परन्तु इस मुहिम के सम तो वे दूर रही। वैसे भी फाँसी की मांग

करने वाले यह भूल जाते है कि यदि बलात्कार मे फाँसी होगी तो बलात्कार और हत्या एक साथ होगी तब क्या होगा? फिर यह बलात्कार वैसा बलात्कार नहीं था जैसे पाकिस्तान बंटवारे या गुजरात दंगो के समय हुआ। यह बलात्कार अपनी शारीरिक भूख मिटाने के निमित्त किया गया बलात्कार था जो एक आपराधिक कृत्य होते हुए भी किसी षडयंत्र या बदले की भावना से प्रेरित नही था । जब व्यक्ति पर कामदेव सवार होता है तो वह फाँसी तक का भय भूल जाता है। प्रधानमंत्री बर्ल्युस्कोनी की कई कहानियां हमने सुनी है। इसलिये बिना सोचे समझे हर मामले को फाँसी से जोड देना ठीक नहीं । कारण चाहे जो भी रहा हो किन्तु इतना स्पष्ट है कि पूरे भारत मे तंत्र से जुडे सभी घटको द्वारा एक साथ उठायी गयी आवाज मात्र बलात्कार जैसे अपराध का समाधान खोजने जैसे साफ साफ उद्देष्य तक सीमित नहीं थी । इसके पीछे कोई न कोई छिपा एजेन्डा भी अवष्य था। ऐसा लगा जैसे सब लोग अपनी भावनाएं व्यक्त करने के लिये किसी घटना की प्रतीक्षा मे हो और इस घटना ने उन्हे वह अवसर दे दिया हो।

यह सब होते हुए भी हमे यह तो विचारना ही होगा कि भारत मे लगातार बढ रही बलात्कार की घटनाओं का दोषी कौन? स्वाभाविक है कि स्वतंत्रता के बाद जबसे तंत्र से जुडी विभिन्न इकाइयो ने बलात्कार रोकने का काम सम्हाला है तब से ये घटनाएं दिन दूनी रात चौगुनी बढ रही है। तंत्र से जुडी वह इकाई तो दोषी नहीं जो विवाह की उम्र बढाने या वैष्यावृत्ति बार बालाओ पर रोक जैसी बे सिर पैर की बाते करके अप्रत्यक्ष रूप से बलात्कार की परिस्थितियों का विस्तार कर रही है अथवा वह इकाई तो दोषी नहीं जो जूआ शराब गुटखा और तम्बाकू निषेध जैसे गैर आपराधिक कार्यो को अपराध बना बना कर पुलिस और न्यायालय को ओवर लोडेड कर रहे है? कही वे लोग तो दोषी नही जो परिवार व्यवस्था को कमजोर करने को ही आधुनिकता समझ रहे हो अथवा वे भी दोषी हो सकते है जो स्त्री पुरूष के बीच की दूरी घटाने मे स्वाभाविक से ज्यादा तेज गति से दौड रहे हो और उसके परिणाम मे बलात्कार बढ रहे हो । कारण चाहे जो भी हो किन्तु है इन्ही तंत्र से जुडी इकाइयों के बीच जो इकाइयां पिछले दिनो इस बलात्कार की घटना को आधार बनाकर इतना विरोध प्रदर्शनकर रही थी।

इस समस्या के समाधान की भी चर्चा करनी होगी। भारत मे बढ रहे बलात्कार और हिंसा सिर्फप्रशासनिकसमस्या तक सीमित नहीं है। एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि यदि समाज मे कुल आबादी के एक डेढ प्रतिशत से कम अपराध होते है तो वह प्रशासनिकसमस्या होती है किन्तु यदि अपराध दो से भी उपर हो जावे तो नीतियों मे परिवर्तन की जरूरत बन जाती है। यदि अपराध तीन चार प्रतिशत से भी पार कर जावे तो वह सामाजिक चिन्ता का आधार बनती है और यदि अपराध पांच प्रतिशत से भी उपर हो जावे तो आपात्काल समझकर धर्म समाज राज्य सबको मिलबैठकर समाधान खोजने चाहिये। मुझे तो ऐसा लगता है कि भारत मे अपराध नियंत्रण की समस्या प्रशासनिकसीमा से पार कर रही है। नीतिगत बदलावो की जरूरत हैं। आवश्यक हो तो सामाजिक हस्तक्षेप भी करना चाहिये। यदि कोई समस्या तंत्र से जुडी इकाइयां नहीं सम्हाल पा रही है तो उसे सामाजिक बहस मे शामिल करना जरा भी गलत नही है।

सबसे पहला काम तो यह होना चाहिये कि आधुनिक महिलाएं ऐसे बलात्कार के मामलो के चिन्तन मे अपनी जोर जबर दस्ती मत करें। समाज के सभी स्त्री पुरूष वर्ग एक साथ बैठकर सोचें। दूसरा काम यह हो कि तंत्र से जुडी विभिन्न इकाइंया भी आत्म मंथन करें कि उनसे कहां भूल हो रही है। एक स्त्री अपने पति के ग्यारह टुकडे कर के फेंक दे तो वे महिलाएं जरा भी चिन्तित न हों जो किसी अपराधी पुरूष द्वारा जघन्य बलात्कार के लिये पुरूष समाज को ही कटघरे मे खडा करते रहती है। न्यायपालिका हमारी एक जिम्मेदार इकाई होते हुए भी तंत्र का ही एक भाग है । उसकी भूमिका सिर्फ पुलिस या सरकार को फटकार लगाने तक सीमित नहीं है। यदि कोई जग्गु पहलवान सैकडो अपराध करके भी खुला घूमता है या जमानत पर है तो प्रश्न सिर्फ पुलिस और सरकार तक ही सीमित नही रहेंगे। आपको भी उत्तर देना होगा कि मुकदमे मे इतनी देरी मे आप कितने गंभीर हैं। गंभीर आपराधिक प्रकरणों को लम्बे समय तक लटकाकर आप दिल्ली की मेट्रो सेवा संचालन या मकानो की उंचाई निचाई निपटाने मे अपना समय खर्च कर दे तो समज आपसे भी पूछ सकता है। यदि अपराध नियंत्रण मे है तो पुलिस तक उत्तरदायी है किन्तु यदि बढते है तो सरकार तक आंच आती है। यदि तेज गति से बढते है तो सम्पूर्ण संसद को उत्तर देना होगा और यदि अनियंत्रित है तो सम्पूर्ण व्यवस्था उत्तरदायी होती है जिसमे न्यायपालिका भी शामिल है। यदि ऐसा महसूस होता है कि बलात्कार की घटनाएं अनियंत्रित है तो सब लोग एक दूसरे पर दोषारोपण करने का खेल बन्द करे और मिल बैठकर इसका समाधान खोजे अन्यथा इस प्रकार एक दूसरे पर दोषारोपण लोकतंत्र की जडों को ही खोखला कर देगा।

शरीफ का घर जले तो....................

शरीफ का घर जले तो अनेक लोग अपनी रोटी सेंकना भी शुरू कर देते है। यह देहाती कहावत उपरोक्त घटना के बाददिल्ली मे प्रत्यक्ष देखने को मिली । एक बलात्कार की षिकार लडकी अस्पताल मे जीवन मरण के बीच झूल रही थी, तो यहां जन्तर मंतर पर कुछ महिलाएं अपने अधिकारों के लिये प्रदर्शनकर रही थी। प्रारंभ मे तो उन कथित अपराधियों को कठोर दण्ड देने तक प्रदर्शनसीमित था और जो ठीक भी था किन्तु शीघ्र ही वामपंथी बुद्धिजीवी

महिलाओं ने प्रदर्शनको नारी मुक्ति के रूप मे बदल दिया और उसके बाद तो यह आंदोलन नित नये नये स्वरूप ग्रहण करता गया। कभी यह प्रदर्शनयुवा पीढी के आंदोलन मे बदला तो कभी बलात्कार के विरूद्ध कठोर कानून के पक्ष मे तो कभी पुरातन और आधुनिक संस्कृति के रूप मे । यह सब होते हुए भी कभी आंदोलन बढते बलात्कार पर गंभीर विचार मंथन का रूप ग्रहण नही कर सका।

शीशे की तरह साफ है कि है कि सम्पूर्ण भारत मे बलात्कार की घटनाएं लगातार बढ रही है। बलात्कार बढने की भविष्यवाणी मै पिछले तीस चालीस वर्षो से लगातार करता रहा हूँ। बलात्कार तो बहुत तेजी से बढने थे किन्तु कुछ तो प्राचीन संस्कार रोक रहे थे और कुछ सामाजिक भय के कारण प्रकाष मे नही आ रहे थे अन्यथा जैसी हालत हमारी न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका ने कर रखी थी उसमे बलात्कार बढने के अतिरिक्त कोई अन्य परिणाम होना ही नही था। बलात्कार वृद्धि के चौतरफा अवसर पैदा किये गये । आधुनिक सामाजिक वातावरण ने युवा बच्चो को ही काम इच्छा के मामले मे समय से पूर्व ही बालिग बना दिया तो दूसरी ओर नासमझ अनुभव हीन नेताओ ने विवाह की उम्र बढाने जैसा कानून बनाकर समस्या को और ज्यादा गंभीर कर दिया। इन लोगो ने एक से ज्यादा विवाह पर भी कानूनी रोक लगा दी तो दूसरी ओर इन्होने वैश्यालय बार बालाओ पर भी आंषिक प्रतिबंध लगा दिये। हमारे न्यायालय तो इस मामले मे और भी ज्यादा बढ चढ कर अपनी आहुति देते रहे । इन्होने बच्चो पर पारिवारिक अनुशासन का हल्का सा दबाव भी उछालने मे बहुत जल्दवाजी दिखाई। प्रेम विवाहो को प्रोत्साहित करने मे हमारी अन्य इकाइयों के साथ साथ न्यायपालिका भी शामिल हो गई । सभी प्रयत्नो का सम्मिलित परिणाम था बलात्कार वृद्धि । यह परिणाम जो होना था वह हुआ । आग और पेट्रोल के बीच दूरी घटाने का परिणाम यदि विस्फोट हो तो दोष किसका।

बलात्कार और हत्या की दुर्घटना को एक सुअवसर मानकर आधुनिक महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिये संघर्ष के रूप मे बदल दिया। दिल्ली की सभी आधुनिक महिलाएं सडको पर निकल पडी। संसद की महिलाओ ने संसद मे अपने आंसू गिराये तो अन्य महिलाएं भी अपने अपने स्तर पर पूरी तरह सक्रिय रही। महिलाओं के विरूद्ध अपराधो मे दण्ड कठोर हो ,बलात्कार का दण्ड फाँसी हो, महिलाओ को अलग से सुरक्षा दी जाय, जैसी अनेक भावनात्मक मांगे उछाली गई। आधुनिक महिलाओ ने यह सिद्ध करने की पूरी पूरी कोशिश की कि वे दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएं ही भारत की सारी महिलाओ का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होने पूरे पूरूष वर्ग को ही अपना प्रतिद्वंदी, अपना शोषक सिद्ध करने मे कोई कोर कसर नही छोडी। टी वी पर आयोजित बहस मे ये महिलाएं इस तरह पुरूषो पर झपटती थी जैसे कि बहुत लम्बे समय बाद इन्हे अपने मन की भडास निकालने का सुअवसर प्राप्त हुआ हो । न कोई तर्क न कोई विचार सिर्फ आक्रोष ही आक्रोष । टी वी मे जब इनका आंदोलन दिखता था तो ऐसा दिखता था जैसे कि इनके दिल की आवाज निकल रही हो किन्तु जन्तर मंतर पर जाकर देखने पर यह भेद खुला था कि टी वी कैमरा का बटन दबाने से दस सेकेन्ड पूर्व इनकी आवाज निकलती थी और बटन दबने के दस सेकेन्ड बाद ही शान्त होकर किसी दूसरे टीवी कैमरे की प्रतीक्षा करने लगती थी। कई दिनो तक दिल्ली सहित देशके अनेक शहरो मे महिलाओ का यह प्रयत्न चलता रहा। परंपरागत महिलाएं या तो निर्लिप्त रही या इन महिलाओ पर अपने अपने परिवारो मे कटाक्ष करती रही। देशका पुरूष वर्ग इसे अल्पकालिक आक्रोष समझकर निकल जाने की प्रतीक्षा मे चुप रहा क्योकि स्पष्ट दिखता था कि पुरूषो का मैदान मे आना ज्यादा हानिकारक होगा और सारा टकराव स्त्री पुरूष के अलग अलग केन्द्र बना देगा जो इन महिलाओं का उद्देष्य है। ये महिलाएं सिर्फ इतना ही चाहती थी कि स्त्री पुरूष के बीच वर्ग संघर्ष बढे और उस संघर्ष से इन आधुनिक महिलाओ को कुछ लाभ हो भले ही समाज टूटे तो टूट जाये। राजनैतिक दलो ने भी बहती गंगा मे हाथ धोना ही ठीक समझा। सभी दलो ने अपनी अपनी महिला कार्यकर्ताओ को अग्रीम मोर्चे पर खडा किया। टी वी चैनल वाले भी अपनी अपनी महिलाओ को आगे लाने लगे । पूरा वातावरण स्त्री पुरूष के बीच विवाद की दिशामे लगातार बढता रहा।

कुछ पुरुषों का धैर्य टूटा। राजस्थान पुलिस के एक सिपाही ने एक प्रदर्शनकारी लडकी को पहचानते हुए कटाक्ष किया कि दस दस ब्वायफ्रेन्ड रखती हो और यहां आकर नाटक करती हो। सिपाही के खिलाफ बहुत हो हल्ला हुआ किन्तु किसी ने यह जांच नही की कि जिस लडकी के विषय मे यह बात हुई वह लडकी वैसी ही है या नही। इसके बाद तो कई लोग अलग अलग भाषा मे बोलने लगे। आषा राम बाबू ने कुछ टिप्पणी की तो कैलाश विजय वर्गीय और मोहन भागवत ने कुछ दुसरी । उत्तराखंड के मुख्य मंत्री विजय बहुगुणा जी ने बहुत हिम्मत करके महिलाओ को सीख दी कि वे छ बजे शाम के बाद बाहर निकलने से बचे । सबसे गंभीर टिप्पणी शरद याहव की थी जिन्होने कहा कि सेक्स एक प्राकृतिक भूख होने से उसपर गंभीर चर्चा होनी चाहिये थी किन्तु कुल मिलाकर सतही बहस हो रही है। इसके बाद तो और भी लोग बोलने लगे और धीरे धीरे यह मामला महिला पुरूष के बीच बहस का रूप लेने लगा जिसमे आधुनिक महिलाएं कुछ दबने लगी । धीरे धीरे आम लोग कुछ आधुनिक महिलाओ की इस नाटक बाजी के खिलाफ आवाज उठाने लगे । बलात्कार एक अपराध है। पांच प्रकार के अपराध 1. चोरी डकैती लूट 2 बलात्कार 3 मिलावट कमतौल 4 जालसाजी धोखाधडी 5 हिंसा आतंक बल प्रयोग अपराध है। बलात्कार भी इन

पांचो मे एक है। पांचो अपराध परिस्थिति अनुसार जघन्य हो जाते है और परिस्थिति अनुसार साधारण। दिल्ली बलात्कार प्रकरण भी परिस्थिति अनुसार जधन्य बना। यदि बल प्रयोग अपनी सीमाएं नही तोडता, सीमाएं तोडने मे भी अमानवीय कृत्य नही होता तो घटना जघन्य रूप नही लेती। इस घटना को आधार बनाकर हर बलात्कार को गंभीर कह देना उचित नही। दिल्ली गैगरेप के अपराधियो को फाँसी दो की मांग उचित है किन्तु हर बलात्कार को जघन्य कृत्य बना दे यह ठीक नही । यदि हर बलात्कारी को फाँसी की बात होगी तो बलात्कार के साथ हत्या जुडने पर क्या होगा ,फाँसी किसी समस्या का समाधान न होकर समाज मे अपराधो के विरूद्ध भय पैदा करने का प्रतीक मात्र है। प्रतीक कठोर होना चाहिये किन्तु यदा कदा ही उपयोग करना चाहिये। बलात्कार के लिये दण्ड की वर्तमान मात्रा बढाना ठीक नहीं। अनेक बलात्कार तात्कालिक भावना वष होते है और अनेक योजनाबद्ध। दोनो मे अंतर करना होगा। यदि आपने बलात्कार को ज्यादा कठोर दण्ड बना दिया तो बलात्कार के बाद हत्याओ की बाढ आनी स्वाभाविक है। इस घटना के कुछ दिन बाद हीशंकर गढ मे दो युवक और एक युवती मेले से एक ही साइकिल पर लौट रहे थे। रास्ते मे तीनो के बीच सेक्स क्रिया हुई । इस धटना को पीछे से आने वाले परिचितो ने देख लिया और लडकी ने देखकर लडको को रिर्पोट करने की धमकी दी । लडको ने अपराध और दण्ड की गंभीरता के परिणाम को भापकर लडकी की हत्या कर दी और लाश छिपा दी। हमे ऐसे परिणामो की भी कल्पना करनी होगी। बलात्कारको और ज्यादा गंभीर बनाने की अपेक्ष त्वरित न्याय ज्यादा कारगर होगा। साथ ही बलात्कार शब्द की परिभाषा भी ठीक करनी होगी। हर प्रकर के यौन अपराध को गंभीर बनाने की आदत छोडनी होगी। यौन उत्पीडन की घटनाएं कही अपराधी महिलाओ के लिये हथियार के रूप मे प्रयुक्त न होने लगे यह भी ध्यान रखना होगा। मेरा तो यहां तक अनुभव है कि किसी वर्ग विशेष को विशेष अधिकार देने के बहुत घातक परिणाम होते है। महिलाओ को दहेज के नाम पर जो विशेष अधिकार दिये गये उसके दुष्परिणाम जग जाहिर है। किरायेदारी कानून मे किराये दारो को विशेष अधिकार देने के दुष्परिणाम आज तक भुगत रहे है। किसी व्यक्ति को विशेष परिस्थिति मे कुछ विशेष सुविधाए दी जा सकती है। किन्तु विशेष अधिकार नही दिये जा सकते। किसी वर्ग को तो बिल्कुल भी नही। विशेष अधिकार इसलिये देना ठीक नही क्योकि हर वर्ग मे अच्छे और बुरे लोग होते है । ये विशेष अधिकार बुरे लोगो के लिये एक हथियार का काम करते है। फांसी की आवाज बहुत जोर शोर से उठी। इस मांग मे ऐसी कुछ महिलाएं भी शामिल दिखीं जो बेअतं सिंह या अफजल गुरू के फाँसी के विरूद्ध जोर शोर से आवाज उठाती रही हैं। बेअंत सिंह के हत्यारों को फाँसी हो या ना हो , अफजल गुरू का अपराध बडा था या छोटा इससे कोई मतलब नही। राजीवगांधी हत्या केष को भले ही लटकने दो किन्तु बलात्कारियों को तो तत्काल फाँसी दो, ऐसी मांग गैर जिम्मेदार है। नकली दवा बनाने वालों के मुकदमे किनारे कर दो, बडे बडे भ्रष्टाचार करने वालों के मुकदमें बाद मे देखेगे, नक्सलवादी आतंकवादियो की चर्चा छोडो, किन्तु सारी न्यायिक प्रक्रिया रोक कर सिर्फ बलात्कार को पहले निपटाओ। ऐसी मांग गैर जिम्मेदाराना है, ब्लैकमेल है, दबाव की राजनीति है। भारत का राज नेता वोटो की लालच मे ऐसी महिलाओं से दबकर जो समझौते कर रहा है अथवा न्यायपालिका भी ऐसे दबाव को जनाक्रोष समझने की भूल कर रही है, वह भविष्य मे गलत पणिाम दे सकता है। गंभीर अपराधो के लिए फास्टट्रैककोर्ट बनना चाहिए। जिसमें ब्लात्कार के गंभीर अपराध भी शामिल है, किन्तु सारे गंभीर अपराधो को अलग करके ब्लात्कार के लिए फास्टट्रैक कोर्ट की मांग उचित नही। अपराध-अपराध होता है। चाहे वह किसी पुरूष द्वारा किया गया ब्लात्कार हो या किसी महिला द्वारा अपने प्रेमी के साथ मिलकर अपने पति के ग्यारह टुकडे करने की घटना। दोनो घटनाएं एक दिन की हैं, दोनो जघन्य है,फास्ट ट्रैक कोर्ट के लायक है। प्राचीन काल मे सेषन कोर्ट का उद्देष्य यही था। किन्तु जब राषन और लकडी के मुकदमें भी गंभीर अपराध बनने लगे, दहेज जैसे मामले भी घास भूसे की तरह सेषन ट्रायल बनने लगे तो सेषन कोर्ट ओवर लोड हो गया और अब उसकी जगह फास्टट्रैककी मांग उठी। इनकी महत्ता और प्रभाव बनाये रखना होगा अन्यथा इनको भी ओवर लोडेड कर दिया जाएगा।

इस आंदोलन के समय तंत्र से जुडी सभी इकाइयां जोर शोर से पुलिस के खिलाफ आवाज उठा उठा कर अपनी चमडी बचाते दिखीं । घटना के बाद न्यायालय को काला शीषा याद आया । इसके पूर्व क्या न्यायपालिका नहीं जानती थी कि काले शीषों पर कार्यवाही नही डुई है। यदि नहीं जानती थी तो दोष किसका? सब जानते है कि पुलिस मोटी चमडी वाली होती है। उसे कितनी भी गाली दे दो वह उत्तर कभी देती ही नही न कभी प्रभावित होती है। हर नेता हर मीडिया कर्मी पुलिस की आलोचना करके अपनी जान बचाना चाहता है। जबकि स्पष्ट है कि ऐसी घटनाओ के विस्तार मे पुलिस को छोडकर बाकी सब दोषी है। न तो शादी की उम्र पुलिस ने बढाई है न ही वैश्यालय ओर बार बालाओ को रोकने का कानून पुलिस ने बनाया है। आप पुलिस पर राषन चोरी ओर बाल मजदूरी जैसे कामो का वजन डालते जाओ, न्यायालय दस दस वर्षो तक भी अपराधी को दण्ड न घोषित करे, राष्टपति फाँसी दया याचिका को जीवन भर लटकाए रखे और सब मिलकर घटना के समय पुलिस को गाली देकर स्वय पाक साफ बच निकलने का प्रयास करें यह तिकडम निन्दनीय है। सभी दोषियों को बैठकर आत्म मंथन करना चाहिये। विफलता पूरे तंत्र की है। सम्पूर्ण तंत्र विफलता स्वीकार करे, बैठकर

सोचे और आगे कुछ समाधान करे तभी कुछ बदलाव दिख सकता है।

कुछ ऐसे प्राकृतिक सामाजिक निष्कर्ष हैं जिनकी अनदेखी इस वर्तमान समस्या की जड मे है जैसे

1 महिला और पुरूष एक दूसरे के पूरक है विकल्प नही। दुर्भाग्य से पूरक और विकल्प के बीच का अंतर न समझने की भूल हो रही है।

2 महिला और पुरूष कोई अलग अलग वर्ग न हैं न हो सकते हैं। परिवार एक संगठन है । परिवार का कोई सदस्य परिवार की सहमति के बिना किसी अन्य संगठन का सदस्य नही बन सकता । महिला और पुरूष का परिवार की स्वीकृति के बिना किसी संगठन मे शामिल होना पूरी तरह असामाजिक कार्य है।

3 पति और पत्नी के बीच प्राकृतिक रूप से पति को आक्रामक और पत्नी को आकर्षक होना चाहिये।

4 स्त्री और पुरूष परिवार मे पति पत्नी ,मां, बेटा, भाई-बहन सहित अनेक भूमिकाओ का निर्वाह करते है। पति पत्नी एक दूसरे के सहभागी, मां श्रद्धा की पात्र तथा बहन सहयोग की पात्र होती है। जिस लडकी के साथ बलात्कार हुआ उसका भाई तथा पिता पुरूष होते हुए भी लडकी के पक्ष मे रहे। यह समस्या किसी भी रूप मे महिला पुरूष की समस्या नही है।

5 मौलिक अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के समान होते है। प्रत्येक व्यक्ति के इन अधिकारो की सुरक्षा राज्य का भी दायित्व है और समाज का भी। यदि किसी भी स्त्री या पुरूष के मौलिक अधिकारो का उल्लंघन परिवार का भी कोई सदस्य करता है तो वह अपराध है, किन्तु संवैधानिक अधिकारो की सुरक्षा समाज का दायित्व नही, सिर्फ राज्य का है। सामाजिक अधिकारो की सुरक्षा समाज और राज्य का कर्तब्य है दायित्व नही। मूल अधिकारो के मामले मे समानता का व्यवहार आपका अधिकार है किन्तु संवैधानिक और सामाजिक मामलो मे समानता का व्यवहार करना मजबूतो का कर्तब्य है आपका अधिकार नही।

6 स्त्री और पुरूष की प्रकृति आग और पेट्रोल के समान है। यदि दूरी बढाने का प्रयत्न होगा तो सृजन रूकेगा और घटाने का प्रयास होगा तो विध्वंस का खतरा बढेगा।

7 समाजके सामाजिक मामलों मे सरकार का हस्तक्षेप घातक होता है। सरकार को चाहिये कि वह बलात्कार को छोडकर अन्य मामले जैसे कन्या भ्रूण हत्या दहेज महिला उत्पीडन, वैष्यावृत्ति नियंत्रण बार बाला पर रोक विवाह की उम्र जैसे सामाजिक मामलों से स्वयं को बाहर कर ले।

8 परिवार व्यवस्था हमारे सहजीवन की पहली पाठषाला तथा प्रयोगषाला है । सरकार को परिवार व्यवस्था को बिल्कुल नुकसान नही पहुचाना चाहिये। प्रेम विवाह लडके लडकी का मौलिक अधिकार है किन्तु प्रेम विवाह को प्रोत्साहन देना एक आसामाजिक कार्य है। दुर्भाग्य से हमारी तीनो राजनैतिक इकाइयां ऐसी भूल कर रही है।

9 परिवार के किसी भी सदस्य को परिवार छोडने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये किन्तु परिवार मे रहते हुए परिवार का अनुशासन भी आवश्यक हैं। तलाक के मामले मे सरकार को कोई कानून नही बनाना चाहिये। तलाक प्रत्येक स्त्री पुरूष का मौलिक अधिकार है जिसमे पुरातन पंथी लोग नासमझी से बंधन लगाते है।

10 अपराध, गैर कानुनी और अनैतिक की अलग अलग व्याख्या होनी चाहिये । अपराधो मे अधिक कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिये जिसमे बलात्कार भी शामिल हैं। मृत्युदण्ड जारी रहना चाहिये तथा कभी कभी चौक पर खुली फाँसी का भी उपयोग करना चाहिये।

यदि इन मुद्दो पर गंभीर विचार मंथन हो तो बलात्कार की घटनाएं भी रूक सकती है और समाज भी टूटने से बच सकता है। हम प्रबुद्ध नागरिक का कर्तब्य है कि वह ऐसे विचार मंथन को आगे बढाये।

बुलंदशहर बलात्कार की घटना, एक राजनैतिक सुअवसर

कहावत है कि मक्खी खोजे घाव, नेता खोजे दांव। इसी तर्क के आधार पर भारतीय तंत्र व्यवस्था भी समाज में होने वाली किसी घटना विशेष पर मक्खियों के समान एकजुट होकर टूट पडती है। कुछ वर्ष पहले उ0प्र0 में नेषनल हाईवे पर कुछ अपराधियों ने एक कार यात्रियों को रोककर उन्हे लूट भी लिया तथा उनकी मॉ, बेटी के साथ बलात्कार भी किया। उ0प्र0 का हर राजनैतिक दल घटना को विलक्षण मानकर उस पर प्रतिक्रिया देने लगा, तथा आक्रोष व्यक्त करने लगा। यहॉ तक कि आन्दोलन की धमकी भी देने लगा। मायावती जी ने मुख्यमंत्री के त्याग पत्र की मांग कर दी तो मुख्यमंत्री अखिलेष यादव ने अनेक पुलिस अधिकारियों को सस्पेंड कर दिया। क्योंकि पुलिस अधिकारियों ने मुख्यमंत्री द्वारा घोषित चौबीस घंटे की समय सीमा में अपराधियों को गिरफ्तार करने में सफलता प्राप्त नहीं की। आश्चर्य ही है कि कोई मुख्यमंत्री किसी अपराध में गिरफ्तारी के लिए चौबीस घंटे की समय सीमा बांध देता है और उसके ऐसे आदेशकी आलोचना न होकर प्रशंसा होती है। केन्द्र सरकार भी सक्रिय हुई। मीडिया भी अपने को तंत्र का ही एक भाग मानता हैं परिणाम स्वरुप वह भी मक्खियों के झुंड में शामिल हो गया। अच्छा हुआ कि पीडित महिला दलित नहीं थी। यदि दलित होती तो मक्खियों को और अधिक लाभ उठाने की सुविधा मिल जाती। फिर भी आजकल राजनेताओं के लिए महिला और बलात्कार के लाभ उठाने का सीजन चल रहा है। जो घटना यदि एक साथ जुड़ जाये तो सभी नेताओं में आगे निकलने की प्रतिस्पर्धा दिखने लग जाती है। मेरा अपना अनुभव है कि पूरे देशमें इस तरह की या इससे भी अधिक जघन्य बलात्कार की घटनाएँ आमतौर पर होती रही हैं जिन्हें तंत्र

पिछले लम्बे समय से न तो रोक पा रहा है न हीउसकी रोकने की कोई योजना है। जैसी घटनाएँ पूरे देशमें लगातार होती रहती है वैसी ही कोई घटना किसी बडे शहर के आसपास मुख्य मार्ग पर हो जाये तथा मीडिया भी सुविधाजनक तरीके से उसे हाइलाइट कर सके तो सभी राजनेता, मीडिया तथा न्यायालय उस घटना को आधार बनाकर इसमें अपनी सक्रियता की परीक्षा देने कूद पड़ते हैं। ऐसा लगता है जैसे कि उक्त घटना भारत में वर्षो बाद घटी हो तथा बहुत विलक्षण घटना के रुप में हो। मैं जानता हूॅ कि जो भी लोग इस घटना को आधार बनाकर उछलकूद करने का नाटक करते दिख रहे है उनमें से किसी एक का भी ऐसा रिकार्ड नहीं है जो ऐसी घटनाओं का वास्तविक समाधान करने की इच्छा शक्ति रखता हो। नाटक तो सिर्फ दर्षकों को मोहित करने के लिए ही होता है और ऐसा नाटक सब लोग इसलिए कर रहे है कि कहीं वे इस दौड़ में पिछड़ न जाये।

मैं आश्वस्तहूॅ कि कुछ दिनों में न्यायपालिका भी अपनी ताकत दिखाने के लिए इस युद्ध में कूदेगी। नेता लोग मुआवजा देने की मांग करेंगे। पीड़ित पक्ष मुआवजा लेने से इन्कार करेगा तथा अपराधियों को फांसी देने की मांग करेगा। धरना प्रदर्शनआत्महत्या की धमकी मुआवजा आदि सारे नाटक आजमाये जायेंगे। वकील दोनों पक्ष में खड़े होकर पैसा कमांयेगे और मीडिया पांच दस वर्षो तक समय-समय पर इस घटना की याद दिलाता रहेगा। देशभर के अन्य बलात्कार पीड़ित लोग अपने भाग्य का रोना रोयेंगे कि उनका मामला उ0प्र0 की इस घटना की तरह क्यों नहीं उछल सका। निर्भयाकांड भी इसी तरह की मक्खियों के घाव पर भिनभिनाने के समान उछला था किन्तु न उसके बाद बलात्कार रुके न ही ऐसे मुद्दों को उछालने में अपनी भूमिका स्थापित करने वालों को कहीं कोई शर्म आयी। मैं आश्वस्त हूॅ कि साल छः महिने के बाद फिर से ये बेषर्म लोग कोई और घटना की प्रतीक्षा करेंगे जिसमें व्यक्ति भले ही बदल जाये किन्तु पात्र नहीं बदलेंगे।

प्रश्नउठता है कि क्या किया जाये? ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही चाहिए किन्तु स्पष्ट दिख रहा है कि हमारे नेताओं को समाधान करने में कोई रुचि नहीं हैं। उनका तो सिर्फ एक ही उददेष्य है कि महिला और पुरुष को दो अलग-अलग खेमों में बांटकर ये अपनी रोटी सेंकते रहें। मैं जानता हूॅ कि महिला सशक्तिकरण का नारा बिल्कुल खोखला और हानिकारक है लेकिन प्रधानमंत्री से लेकर विपक्ष के नेता, न्यायालय से लेकर राष्ट्रपति तक धर्मगुरु से लेकर मीडिया तक सभी एक स्वर से महिला उत्पीडन, महिला सशक्तिकरण जैसे शब्दों का अपने-अपने लाभ के लिए उपयोग कर रहे है। यदि ये सब एक बार भी इस शब्द से लाभ उठाने की कोशिशबंद कर दे तो बलात्कार का बहुत आसानी से समाधान हो सकता है। मैंने पिछले 50 वर्षो से कई बार दो प्रश्न पूछे-

1. महिला और पुरुष के बीच दूरी घटनी चाहिए या बढ़नी चाहिए? इसका अंतिम निर्णय कानून करेगा, समाज करेगा, या परिवार करेगा या व्यक्ति स्वयं।
2. बलात्कार कितने प्रतिशत व्यक्ति की मजबूरी है और कितने प्रतिशत उसकी इच्छा।

मेरा अनुभव है कि जब तक इन दो प्रश्नों पर गंभीर निष्कर्ष नहीं निकल जाते तब तक आप समाधान की दिशा में नहीं बढ़ पायेंगे। तंत्र से जुड़े लोग 60 वर्षो से समाधान का नाटक मात्र कर रहे है किन्तु कभी इन दो प्रश्नों पर विचार मंथन नहीं करते, निष्कर्ष नहीं निकालते क्योंकि उन्हें न समाधान से मतलब है न निष्कर्ष से। उन्हें तो सिर्फ घाव देखते ही मक्खियों के समान टूट पड़ना है।

मैं स्पष्ट कर दॅू कि मैं महिला उत्पीडन, महिला सशक्तिकरण जैसे घातक विचारो तथा नारों के बिल्कुल विरुद्ध हूॅ तथा इस संबंध में मैं किसी भी प्रष्नोत्तर में भाग लेने के लिए तैयार हूॅ।

निठारी कांड, हमारी पुलिस और समाज

व्यक्ति परिवार और समाज के आपसी सम्बन्धो में अधिकांश की सीमाएं सुपरिभाषित और स्पष्ट होनी आवश्यक हैं। यदि ऐसा न हो तो समाज में एसी विकृतियां आनी शुरू हो जाती हैं जो होती है कुछ भिन्न और दिखती है भिन्न।बहूत पुराने समय से ही व्यक्ति, परिवार और समाज के अधिकारों की सीमाएं बहुत स्पष्ट थी।इसलिये टकराव कम होते थे। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने व्यक्ति परिवार और समाज के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या का अधिकार शासन को सौंप दिया जिसमें ऐसी अव्यवस्था फैलाई कि व्यक्ति परिवार और समाज के आपसी अधिकारों की सारी सीमाएं टूट गई।अब तो स्थिति यहॉ तक आ गई कि तीनों के बीच अधिकारों का खुला संघर्ष भी शुरू हो चुका हैं।

अभी कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली के पास उत्तर प्रदेश में नोएडा के निठारी गावं में दो लोगो ने बीस से पच्चीस तक के बीच की संख्या में लड़के लड़कियों के साथ बलात्कार के बाद उनकी हत्या कर दी और लाश को काटकर बगल के नाले में फेक दिया। पंजाब के एक गावं में भी एक पूर्व सांसद की बंद पड़ी मिल में बलात्कार के बाद हत्या के चार बच्चों के शव बरामद हुए।लगभग इसी अवधि में उत्तर प्रदेश मेरठ में कविता चौधरी नामक नवयूवती की हत्या होती है जिसमें उत्तर प्रदेश के कई मंत्री तक के वासनात्मक सम्बन्धों का आरोप लगा। पुरे भारत में एसी घटनाओं की लम्बी सूची है जिसमें वासना पूर्ति के उद्देश्य से कई प्रकार के गंभीर अपराध किये गये।ऐसी घटनाएँ पहले भी होती रही हैं किन्तु लगातार ऐसी घठनाओं का स्वरूप जघन्य अपराधों की दिशा में बढ़ रहा है और ऐसी घटनाओं तथा अपराधों की मात्रा और प्रतिशत में भी लगातार वृद्धि हो रही हैं।

ऐसी सभी चर्चित घटनाओं में अपराधी सम्पन्न होता है,राजनैतिक पहुँच वाला होता है पुलिस से अच्छे सम्बन्ध रखता है जब तक मामला राजनैतिक तूल न पकड़ ले तब तक पुलिस ऐसे मामलों में सक्रिय नहीं होती। मीडिया कुछ दिनोंतक तो ऐसी घटनाओं की बाल की खाल निकालता है किन्तु नई घटना के वातावरण मेंगूँजतेही पुरानी घटना नेपथ्य में चली जाती है। ऐसी घटनाएँ कभी सामाजिक बहस का मुद्दा भी नहीं बन सकती क्योंकि वर्तमान समाज में समाज का नेतृत्व समाजशास्त्रियों के हाथ से खिसक कर या तो राजनीतिज्ञोंके पास चला गया है या मीडिया के पास।

ऐसी जो भी घटनाएँ प्रकाश में आई हैं उनमें हत्यारे का उद्देश्य सिर्फ वासना पूर्ति मात्र है, हत्या तो उस पूर्ति का सहायक उपादान है। हत्यारे को वासनापूर्ति के बाद हत्या करके लाश को कहीं ठिकाने लगा देना अन्य किसी भी उपाय से कम खतरनाक और कम खर्चीला उपाय दिखा। क्योंकि हत्या के अतिरिक्त अन्य सारे ही उपाय लम्बे समय तक उसे ब्लैक मेल करते रहते। जीवनभर किसी के मुँहखोलने के बदले स्वयं को बंधक रखने की अपेक्षा उसे सदा सदा के लिये समाप्त कर देना ही आसान कार्य। फिर आजकल पुलिस और राजनैतिक पहुँच भी इतनी सस्ती है कि मरने वाले गरीब लोगों की आवाज को तो आसानी से किसी दिशा में मोड़ा जा सकता है। यही कारण है कि वासना पूर्ति के लिये वैश्या अथवा अवैध सम्बन्धों के स्थान पर ऐसे जघन्य हत्याओं के मामले बढ़ रहे है।

ऐसे मामलों का सामाजिक विश्लेषण करने के लिये हमें चार बातों पर विचार करना होगा, (1) ऐसी इच्छाएं क्यों बढ़ रही हैं? (2) ऐसे अपराध क्योंबढ़ रहे हैं? (3) पुलिस की क्या भूमिका है? (4) समाधान क्या हैं?

एक बिल्कुल सामान्य सिद्धान्त है कि इच्छा और पूर्ति के बीच अन्तर जितना अधिक होता हैअपराधों की संभावना भी उतनी ही अधिक होती है। प्राचीन समय में कामेच्छा का जन्म सोलह से अठारह वर्ष की उम्र में और पूर्ति के लिये विवाह चौदह से सोलह तक हो जाता था। विशेष स्थिति के लिये वैश्यावृत्ति पर भी कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं था। वर्तमान समय में इच्छाएं तो चौदह से सोलह में पैदा होने लगी और पूर्ति के लिये विवाह सामान्यतया 21 से 28 वर्ष में होने लगा। विशेष स्थितियोंकी व्यवस्था में भी कई प्रकार की कानूनी बधाएं खड़ी हो गई। भूख और भोजन के समय में दूरी बढ़ा दी जाय और चुपके से क्षुधापूर्ति के सभी होटल भी बंद कर दिये जायें तब भोजन की लूट या चोरी के अवसर बढ़ना स्वाभाविक है। सामाजशास्त्र के विषयोंमें अनाड़ी राजनीतिज्ञ जब टांग फंसाते हैं तब वातावरण बिगड़ने को सिर्फ कानून नहीं रोक सकता। चरित्रहीन लोग जब चरित्रवान दिखने का प्रयत्न करने के क्रम में चरित्र की व्याख्या करने लगें तो परिणाम तो भयंकर होना ही है। जो शासन व्यवस्था बलात्कार और हत्या जैसे अपराध रोकने में सफल नहीं है वह बार बालाओंऔर वैश्यावृत्ति नियंत्रण के लिये कानून बनाती है। पारिवारिक मामलों में हिंसा के कानून ने कुछ और विसंगतियॉ पैदा की है।आजकल तो बलात्कार की ऐसी परिभाषा बन गई है कि किसी महिला को विवाह का वचन देकर वर्षो साथ रहे और विवाह न करे तो वचन भंग के स्थान पर बलात्कार का मुकदमा होने लगा है। पांच पांच वर्ष सुख पूर्वक स्वेच्छा के साथ रहने वालों पर भी ऐसे आरोप मैने देखे हैं। किसी बांध को बांधने की तत्परता दिखाने वाले यदि अतिरिक्त जल प्रवाह की चिन्ता न करें तो बांध टूटने का खतरा बिल्कुल स्वाभाविक है।

ऐसे मामलों में पुलिस पर भी खुब उँगलियॉ उठाई गई। पुलिस में भारी भ्रष्टाचार है ये लोग नेताओ से दबे हूए है। ये लापरवाह है ये लोग गरीबो की ओर ध्यान नही देते ऐसे कई आरोप लगे।ये आरोप तो पूरी तरह सच हैं किन्तु आरोप लगा देना तो कोई समाधान नही है।एक एक पुलिस वाला कितना खर्च करके नौकरी पाता है और नौकरी काल में भी किस किस को हिस्सा देता है यह वही जानता है।मैने एक बार सर्वेक्षण कराया था तो पाया कि कुल मिलाकर व्यवस्था में भ्रष्टाचार का जो औसत है पुलिस उससे उपर नही है। यह भिन्न बात है कि सब लोग पुलिस पर आरोप लगाकर अपनी ईमानदारी सिद्ध करते रहते है और पुलिस वाला उत्तर न दे पाता है न देता है वह सोंचता है कि यदि पुलिस की नौकरी करके ही कुछ अतिरिक्त कमाना है तो गालियॉ भी सुननी पड़ेगी और मानवता न्याय आदि आदर्श भी खूंटी पर टांगने होंगे।जो मिडीयाकर्मी आज इतना ज्यादा उछल रहे है वें इतने महीनो तक कहॉ थे। पुलिस राजनेताओं से दबी हुई है इसमें कोई नई बात तो नहीं। पुलिस गरीबो की नही सुनती यह भी कोई खास बात नही। प्रश्न उठता है कि पुलिस गरीबो की सुने भी कैसे? यदि कुल मिलाकर पुलिस की ताकत सौ युनिट है। यदि पुलिस सभी अपराधो की ठीक से विवेचना करे तो उसे दस हजार यूनिट शक्ति चाहिये। वह यदि सब गुमशुदा बच्चों की ही खोज करें तो उसे पांच सौ यूनिट शक्ति चाहिये। जबकि उसके पास ऐसे मामलों कि लिये दस युनिट शक्ति ही उपलब्ध है। स्वभाविक है कि पचास बच्चे गायब होंगे तो पुलिस किसी एक में ताकत लगायेगी और वह भी ऐसे मामलों में जहॉ उसे पैसा भी मिले और राजनैतिक दबाव भी हो। उन्चास मामलों में पुलिस रिपोर्ट लिखकर ठंडे बस्तें में डाल देगी।मैं नहीं समझता हूॅ कि पुलिस पर आरोप लगाने वाले इसमें क्या नई बात कर रहें हैं? क्या वह गरीब की जॉच करे और अमीर को छोड़ दे या क्या वह लाट्री निकाल कर जॉच करे? पुलिस को यदि एक प्रतिशत ही अपराध पकड़ने की शक्ति है तो वह क्या और कैसे करे यह कोई बताने वाला नही।बार बालाओं पर रोक और घरेलू महिला उत्पीड़न रोकने का कानून बनाने वाले यह क्यों नहीं बताते कि इसका वजन आप उसी भ्रष्ट, लापरवाह,अमीर हितैषी

पुलिस को देने जा रहे हैं या कुछ नयी योजना है।

इन अपराधों की रोकथाम का न कोई विचार मंथन हो रहा है न प्रयत्न।सभी दूसरों पर आरोप लगाने की दौड़ में आगे निकलने के प्रयास में है। अपराधियो को खुली फांसी देने के पक्ष में नारा लगाने वालों में ऐसे पेशेवर लोग भी आगे दिख रहे है जो धनंजय और अफजल गुरू की फांसी के विरूद्ध भी नारा लगा रहे थे। इस समस्या का समाधान तो गंभीर विचार मंथन से ही होगा।मेरे विचार में निम्न मुद्दो पर विचार करना आवश्यक है:-

(1) पुलिस हस्तक्षेप योग्य कानुनों की समीक्षा करके कानूनों की मात्रा इतना कम कर देना कि समाज में पुलिस का हस्तक्षेप भी घटे और उसकी कार्य क्षमता भी बढ़ जावें।

(2) पुलिस को राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त करना।

(3) न्यायालयों द्वारा पुलिस को सहयोगी मानने की जगह सहभागी मानने की प्रवृत्ति का विकास।

(4) महिलाओं को पुरूषो के विरूद्ध वर्ग के रूप में खड़ा करने की राजनैतिक प्रवृत्ति पर रोक।

(5) महिलाओ के विशेषाधिकार समाप्त करके समान अधिकार।

प्रश्नोत्तर

1श्री एम एस सिंगला अजमेर राजस्थान अगस्त 2010

प्रश्न- शरीफ का घर ...‘ मार्मिक शीर्षक से बलात्कार के ज्वलन्त प्रश्न पर बहुत जोर से उत्तेजक सराहनीय चिन्तनीय विचार पढे।

आप भी मानते रहे है कि आज की शासकीय व्यवस्था मे समाज को कोई स्थान नही दिया गया है। इसके विपरीत देखने मे आ रहा है कि जहां समाज हावी है वहां शासन पस्त है। उदाहरण है खाप पंचायते।

हर सामाजिक कृत्य को कानून मे बांधना चिमटे से आग की लौ को पकडने जैसा है।इस बात को समझते हुए ब्रिटिश शासन ने भारत मे सामाजिकता पर कानून नही बनाया । सती प्रथा के विरूद्ध कानून की देन भारतीय व्यक्ति राजा राम मोहन राय की रही।

देश के नेता जब वास्तव मे कुछ नही कर पाते तो कानून बनाने की कवायद मे लगे रहते है।

सन 2006 मे वेश्यालय जाने को अपराध घोषित करने का कानून बनाना था । विरोध के कारण वह रूक गया । अब उसी हथियार को फिर गढने मे लगने का मन हे। इससे अनेक प्रश्न उभरते है। यथा

क. क्या यह बलात्कार के प्रति कोई उपाय होगा या कि इससे बलात्कार को बढावा मिलेगा?

ख. वेश्यालय जाने को अपराध घोषित करने की बजाय वेश्यालय क्यो न बन्द किये जाय।

ग. दूसरी ओर सैक्स वर्कर अपने व्यवसाय को कानूनी मान्यता देने की मांग कर चुकी है। शासन उसका जबाब क्यो नही देता?

घ. समलैगिकता, लिव इन रिलेशनशिप जैसी गतिविधियो को सरकार मान्यता देती है। इससे क्या अर्थ निकलता है? शायद सरकार अपने को वह भगवान मानती है कि मानव भावनाओ की भी वही नियंत्रक है।

च. असफल प्रयास को दुबारा पेश करना कितना लोकतांन्त्रिक है? यह हिन्दु विवाह अधिनियम जैसे डुबानेवाला कदम नही होगा क्या?

छ. इस सब से क्या यह सन्देश नही जाता लगता है कि सरकार अपराध पर तो अंकुश लगा नही पाती तो जन भावनाओ पर ही अंकुश लगाओ।

देश के पहले प्रधान मंत्री ज0 लाल नेहरू ने सत्ता मे आते ही पहले हिन्दू विवाह अधिनियम पास करा कर देशकी गिरावट का मार्ग प्रषस्त कर दिया। यह एक अजुबा ही है कि अकेले राष्ट्रपति डा0 राजेन्द्र प्रसाद इसके विरोध मे रहे। शेष सारी जनता प्रधानमंत्री के पक्ष मे कैसे हुई ।आज न्यायपालिका भी इस अधिनियम को गलत मानती है। आपका यह विचार सही और मूल्यवान है कि दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएं भारत की शेष महिलाओ का प्रतिनिधित्व कर लेती है। क्योकि उनके पास मंच है, ख्याति है राजनेताओ से साठ गांठ है।

आपने लिखा है, फाँसी किसी समस्या का समाधान न होकर .... भय पैदा करने का तरीका मात्र है। और यही भय अपराध रोकने का सषक्त साधन/कारण रहा है। और रहेगा।

उत्तर-मै सेक्स संबंध दो व्यक्तियो के बीच का व्यक्तिगत संबंध मानता हूॅ जिसमे परिवार और समाज अपने आंतरिक नियम बना सकते है किन्तु सरकार कोई हस्तक्षेप नही कर सकती। परिवार और समाज व्यक्ति को अनुशासित तो कर सकते है किन्तु शासित नही। वैश्यालय बन्द कराने का सिर्फ एक ही आधार है कि आप या तो स्वयं वहां जाना बन्द कर दे या परिवार और समाज का भय आपको जाने से रोक दे। इसके अतिरिक्त यदि कोई प्रयास होगा तो वह समाज के लिये ज्यादा हानिकर होगा। समलैगिकता या लिव इन रिलेशनशिपके सरकार कभी

मान्यता नहीं देती। सरकार ने इन बुराइयों को रोकने के हस्तक्षेप से स्वयं को अलग करके इसे सामाजिक बुराई मान लिया है। एक तरफ तो आप मानते है कि सामाजिक मामलो मे सरकार को हस्तक्षेप न करके उन्हे समाज के जिम्मे छोड देना चाहिये। यदि सरकार छोड रही है तो आप उस पर प्रश्न कर रहे है। सरकार ने स्वयं को हस्तक्षेप मुक्त कर लिया तो इसमे भगवान या नियंत्रक जैसे सवाल कहां से पैदा हो गये।

आपने बहुत ही संतुलित चिट्ठी लिखी है। जब सरकार ने लिव इन रिलेशन शिपअथवा समलैगिकता जैसे असामाजिक कार्यो से स्वयं को अलग करके समाज पर छोडने की पहल की तो आपने देखा होगा कि बाबा रामदेव सरीखे अनेक नासमझ धर्म गुरू भी सरकार के खिलाफ टूट पडे । सच बात यह है कि चाहे वैश्यालय हो या समलैंगिकता अथवा लिव इन रिलेशन शिपअथवा बाल विवाह, सभी सामाजिक पारिवारिक नियंत्रण से अनुशासित करने की सीमा मे आते है न कि कानून के द्वारा रोकने की सीमा मे। ये सभी कार्य अनैतिक है, असामाजिक है किन्तु अपराध नही । इन्हे समझा बुझाकर या सामाजिक भय द्वारा ही रोका जा सकता है न कि दण्डित कर के। अभी अभी जब सरकार ने अठारह की उम्र को घटाकर सोलह करने की शुरूआत की तो आपने देखा होगा कि कटटर पंथी मुसलमान तो सरकार के विरोध मे आये ही कट्टर पंथी हिन्दू भी जिनका नेतृत्व संघ ने किया वे भी सरकार के विरोध मे आ गये। अच्छा हो कि आप संध परिवार को भी यह समझाने की कृपा करे कि वह समाज और सरकार के बीच अंतर करना सीखे। हर मामले मे कुछ भी बोलना कोई अच्छी आदत नही है।

2हितेष कुमार शर्मा,बिजनौर, उत्तरप्रदेश जनवरी 2015

विचार-देशमें बलात्कार की घटनाएँ लगातार बढ़ रही है। ज्यों ज्यों समाधान के प्रयत्न बढ़ रहे हैं त्यों त्यों ऐसी घटनाएँ तेजी से या तो बढ़ रही हैं या प्रकाष में आ रही हैं। मैंने इस विषय में बहुत सोचा तो महसूस हुआ कि समाधान गलत दिशा में हो रहें है। बलात्कार वृद्धि के तीन प्रमुख कारण है-(1)न्यायपालिका की प्रभाव हीनता। न्यायपालिका ऐसे अपराधियों में भय का संदेश देने में असफल है। मुकदमें लम्बें चलते हैं तथा किसी न किसी तकनीकी कारण का सहारा लेकर अपराधी छूट जाता है। (2)महिलाओं में पाश्चातत्य संस्कृति का विकास।महिलाये अपनी सुरक्षा के प्रति जरा भी सतर्क न रहकर वे रात तक या तो अकेली या अपने व्वाय फ्रेन्ड के साथ घूमती रहती हैं। ऐसी स्थिति में बलात्कार की घटनाओं का बढ़ना स्वाभाविक है।(3)युवाओं में पारिवारिक सामाजिक भय का अभाव। अब युवकों में उच्श्रृखलता बढ़ती जा रही है। न परिवार का अनुशासन है न सामाजिक प्रतिष्ठा का भय। ऐसी स्थिति में यदि उसे उत्तेजना और एकान्त एक साथ मिल जाता है तो वह अपने को रोक नहीं पाता। हमारे राजनेता इन कारणों पर विचार किये बिना ही बलात्कार रोकना चाहते है जो संभव नहीं। इस संबंध में आपका क्या विचार है?

उत्तर- भारत में बलात्कार की घटनाएँ तेजी से बढ़ी है। इसके बढ़ने में वे कारण महत्वपूर्ण नहीं जो आपने बताये हैं। मेरे विचार में प्रमुख कारण है करीब दो प्रतिशत महिलाओं का परिवार व्यवस्था से मोह भंग होना।ये महिलाएँअपनी षारीरिक भूख मिटाने के निमित्त किसी खूंटे से बंध कर नहीं रहना चाहतीं। इस इच्छा पूर्ति के लिये उन्हें सबसे अधिक सहायक है महिला सशक्तिकरण की आवाज मजबूत करना। हमारे अधिकांश राजनेताओं को महिला सशक्तिकरण के नाम पर दो सुविधाएं एक साथ मिलती है। (1) वोट(2) अपनी शारीरिक भूख मिटाने में आने वाली बाधाओं का कमजोर होना। ऐसे पुरुष और महिलाएँ सम्पूर्ण भारत में दो प्रतिशत से भी कम हैं किन्तु राजनीति, मीडिया,सामाजिक संगठन से बढ़ते बढ़ते धार्मिक संगठनों तक इनका प्रभाव है। ये पुरुष को उपभोक्ता तथा नारी को उपभोग्य प्रमाणित करने में जी जान लगाए हुए हैं और ऐसे असत्य प्रसार में इनके साथ ऐसे दो प्रतिशत पुरुष और महिलाएँ तक साथ मिलकर काम कर रहें हैं। जबकि सच्चाई यह है कि काम वासना पूर्ति के मामले में महिला और पुरुष एक दूसरे के समान रुप से पूरक हैं। यह कहना बिल्कुल गलत है कि महिला या पुरुष में से कोई एक दूसरे का उपभोग करता हो। महिला सशक्तिकरण के कारण महिला और पुरूष के बीच की दूरी घटरही है। सरकारी नौकरी मे अथवा राजनीति मे अथवा अन्य स्थानो पर भी इस दूरी को घटाने का लगातार प्रयास हो रहा हैं। इस दूरी के घटने से ऐसे दो प्रतिशत स्त्री पुरूषो को एक साथ होने मे सुविधा हो जाती है ।

मुझे तो आश्चर्य है कि कुछ ना समझ लोग बिना विचारे महिला सशक्तिकरण की हॉ में हॉ मिलाने लगते है। ऐसे परिवार तोडक प्रचार का विरोध होना चाहिये। दो प्रतिशत ऐसे स्त्री पुरुषों को कोई अधिकार नहीं कि वे अठ्ठानवें प्रतिशत परिवारिक परिवारों पर अपने कानून थोप सकें।

मुझे तो इस समस्या का एक ही समाधान दिखता है कि परिवार के लोगों को अपने पारिवारिक निर्णय की स्वतंत्रता हो। जो परिवार महिला और पुरुषों के बीच दूरी घटाने के पक्षधर है उन्हें पूरी स्वतंत्रता हो कि वे खुली घूमें। कोई अन्य उन पर कोई रोक न लगावे। दूसरी ओर जो परिवार महिला और पुरुष के बीच दूरी बढ़ाने के पक्षधर हों उन्हें भी छूट हो। इन पर भी कोई कानून बाधा न पैदा करे। परिवार सशक्तिकरण समाज सशक्तिकरण ही समस्या का समाधान है।

नई समाज व्यवस्था

1 विधायिका और कार्यपालिका का पूर्ण पृथक्करण

हम नई समाज व्यवस्था में विधायिका और कार्यपालिका को बिल्कुल अलग-अलग कर देंगे। विधायिका का कार्यपालिका पर कोई प्रत्यक्ष दबाव नहीं होगा, बल्कि दोनों स्वतंत्रता से काम करेंगे। विधायिका के लोग कार्यपालिका में भी जाकर प्रधानमंत्री या मंत्री नहीं बन सकेंगे। दोनों अलग-अलग होंगे। विधायिका के लोगों का यदि कोई सम्मेलन होता है, कोई विचार-विमर्श होता है, इसकी अध्यक्षता कोई कार्यपालिका का व्यक्ति करेगा। अर्थात् यदि जिला सभा की बैठक होती है, तो जिला सभा की बैठक की अध्यक्षता कलेक्टर करेगा। अध्यक्ष को उसमें न वोट देने का अधिकार होगा, न अपनी बात रखने का अधिकार होगा। वह केवल बैठक का संचालन मात्र करेगा। यदि ग्राम सभा की बैठक होगी, तो ग्राम सभा का सचिव बैठक की अध्यक्षता करेगा। इस तरह मैंने यह व्यवस्था की है कि हम विधायिका के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार देंगे। उसमें किसी को विशेष अधिकार नहीं देंगे। कार्यपालिका का व्यक्ति केवल संचालन की व्यवस्था मात्र करेगा।

2 स्वतंत्रता और सामाजिकता के बीच संतुलन की आवश्यकता

सारी दुनिया में अराजकता का प्रमुख कारण यह है कि दुनिया में अब तक निजता और सहजीवन की सीमाएँ बनाई नहीं गई हैं। वर्तमान में जो सीमाएँ बनी हुई हैं, वे गलत हैं, क्योंकि स्वतंत्रता और सामूहिकता दोनों का एक संतुलन-बिंदु होना चाहिए। लेकिन दुनिया में एक तरफ अधिकतम स्वतंत्रता के पक्षधर हैं, दूसरी तरफ अधिकतम सामाजिकता के भी पक्षधर हैं और इन दोनों विचारधाराओं के बीच टकराव चलता रहता है। मेरा यह विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति की सहमति के बिना उसकी स्वतंत्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाई जानी चाहिए, जब तक कि उसने किसी अन्य की स्वतंत्रता में बाधा न पहुँचाई हो। दूसरी तरफ, जब वह व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ जुड़कर सामाजिक संबंध बना लेता है, तब उसकी स्वतंत्रता संयुक्त हो जाती है और व्यावहारिक धरातल पर शून्य हो जाती है। उस स्थिति में उसे कोई स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार ही नहीं होता। इस तरह यदि हम एक नई परिभाषा तैयार करेंगे, तो स्वतंत्रता और सामाजिकता के बीच एक संतुलन पैदा होगा। वर्तमान समय में समाज व्यक्ति की स्वतंत्रता में अनावश्यक हस्तक्षेप करता है और व्यक्ति समाज की शक्ति को स्वीकार ही नहीं करता है। इन दोनों के बीच लगातार टकराव चल रहा है, जो अच्छी बात नहीं है। मेरे विचार से व्यक्ति को परिवार के साथ जुड़ना अनिवार्य कर दिया जाए और परिवार के पारिवारिक मामलों में बिना उसकी सहमति के समाज कोई हस्तक्षेप न करे। इस प्रकार की सीमाएँ स्पष्ट की जा सकती हैं।

3 नई समाज व्यवस्था सत्ता परिवर्तन नहीं, स्वशासन का मार्ग

मैं अपने को दुनिया का सबसे अधिक सुखी और संतुष्ट व्यक्ति मान रहा हूँ। मेरी उम्र 87 वर्ष हो गई है। मेरे परिवार में युवा, वृद्ध, महिला, पुरुष, रिश्ते-नाते, सबके साथ मिल-जुलकर अच्छा व्यवहार है। इसका कारण कोई ईश्वरीय कृपा है, ऐसा मैं नहीं मानता। मैं यह मानता हूँ कि हम लोगों ने 70 वर्ष पहले जो पारिवारिक नियम बनाए थे, उन नियमों का ही योगदान है। हम लोगों ने बैठकर यह नियम बनाया था कि चाहे बालक हो या वृद्ध, सभी परिवार में बराबर के सहभागी माने जाएंगे। सब लोग मिलकर तय करेंगे कि वर्क फ्रॉम होम कौन करेगा और बाहर जाकर काम कौन करेगा। यह निर्णय महिला या पुरुष नहीं, बल्कि महिला और पुरुष, युवा और वृद्ध, सभी मिलकर करेंगे। हम लोगों ने एक अति महत्वपूर्ण कार्य किया है कि हमने अपने परिवार में संपत्ति और सेक्स के विवाद को पूरी तरह खत्म कर दिया है। इस मामले में न कोई कानून दखल दे सकता है, न समाज दखल दे सकता है। हम परिवार के लोग बैठकर आपस में जो नियम बनाएंगे, वही नियम हमारे परिवार पर लागू होगा। परिवार का संविधान हम परिवार के लोग बनाते हैं, कोई दूसरा नहीं। इस तरह 60-70 वर्षों के अनुभव के बाद मैं यह कह सकता हूँ कि दुनिया की सारी समस्याओं के समाधान की शुरुआत परिवार सशक्तीकरण है और इसका जीता-जागता उदाहरण हमारा परिवार है। सामाजिक व्यवस्था में भी हम कुछ नए रिसर्च करके नए निष्कर्ष तक पहुँचे हैं। इस तरह हम दुनिया के सामने वर्तमान लोकतंत्र का एक ऐसा सुधरा हुआ ढाँचा प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप दुनिया की वर्तमान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, संवैधानिक, सब प्रकार की विकृत व्यवस्था में स्वाभाविक बदलाव दिखेगा। हम किसी व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं करेंगे। हम किसी तरह के सत्ता परिवर्तन में विश्वास नहीं रखते। हम तो यह मानते हैं कि हम जिस व्यवस्था का प्रारूप दे रहे हैं, उस प्रारूप के आधार पर सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा। हम वर्तमान सरकार के समर्थक नहीं हैं। हम सुशासन के पक्षधर नहीं हैं। हम स्वशासन के पक्षधर हैं। हम लोक स्वराज के पक्षधर हैं। हम नेहरू परिवार, साम्यवादी संस्कृति और मुस्लिम संगठनवाद के गठजोड़ का खुलकर विरोध करते हैं। इस विरोध में हम संघ, गायत्री परिवार, सर्वोदय, आचार्य कुल, आर्य समाज तथा अन्य सभी संस्थाओं के साथ सहयोग लेते और देते हैं, जो नेहरू

परिवार, साम्यवादी संस्कृति और मुस्लिम संगठनवाद की तिकड़ी के विरुद्ध हैं। हमारी विचारधारा और कार्य प्रणाली बिल्कुल स्पष्ट है। हम भारत की सफलता के बाद दुनिया को इस लोक स्वराज का संदेश देने की इच्छा रखते हैं। मैं दुनिया के लोकतंत्र पर चर्चा करता हूँ, इसका यह अर्थ नहीं है कि हम लोकतंत्र का विरोध कर रहे हैं। इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि हम लोकतंत्र को और अधिक सुधार कर लोक स्वराज की दिशा में ले जाना चाहते हैं। हम किसी भी परिस्थिति में तानाशाही का खतरा नहीं उठा सकते, बल्कि हम तानाशाही की सारी संभावनाओं को दुनिया से समाप्त कर देना चाहते हैं। इसीलिए मैंने यह लिखा कि दुनिया में तानाशाही के दो ही मार्ग दिख रहे हैं—एक है साम्यवाद और दूसरा है इस्लामी संगठनवाद। इन दोनों को दुनिया से समाप्त होना चाहिए और भारत में इन दोनों को ही आधार बनाकर अब तक नेहरू परिवार सत्ता का उपयोग करता रहा। इसलिए मैंने यह सुझाव दिया कि हम भारत में इस प्रकार की तानाशाही के समर्थकों को धीरे-धीरे कमजोर करते रहेंगे और दुनिया को भी यह संदेश देंगे कि वह साम्यवादी संस्कृति और मुस्लिम संगठनवाद का विरोध करें। यही कारण है कि हम लगातार रूस, चीन और ईरान का विरोध करते रहते हैं। हमारी सहानुभूति यूक्रेन और इजरायल के साथ रही है। हम सरकार से भी यह उम्मीद करते हैं कि भारत सरकार अपनी परिस्थितियों को देखते हुए इजरायल और यूक्रेन के साथ अपेक्षाकृत अधिक अच्छा व्यवहार करे, क्योंकि एक तरफ इजरायल इस्लामिक संगठनों की कमर तोड़ रहा है, दूसरी तरफ यूक्रेन भी रूस का घमंड तोड़ रहा है और इस तरह लोकतंत्र तानाशाही की तुलना में निरंतर मजबूत हो रहा है। हम भारत के लोगों से भी निवेदन करते हैं कि वे साम्यवादी संस्कृति, मुस्लिम संगठनवाद और तानाशाह नेहरू परिवार के साथ विरोध में हमारा साथ दें। नई सामाजिक व्यवस्था पर चर्चा कर रहे हैं। हम लगातार मानते आए हैं कि डीजल-पेट्रोल का उपयोग कम से कम होना चाहिए, क्योंकि पूरी की पूरी कृत्रिम ऊर्जा श्रम शोषण है। डीजल-पेट्रोल तो भारत के लिए बहुत ही अधिक घातक है, क्योंकि वह श्रम शोषण के साथ-साथ पर्यावरण भी प्रदूषित करता है और विदेशी शक्तियों की ताकत भी बढ़ाता है। इसलिए भारत को डीजल-पेट्रोल का उपयोग तो कम से कम करना ही चाहिए। इसके लिए चाहे जो भी प्रयोग करना पड़े, वह किया जा सकता है। इसके लिए यदि कोई नुकसान भी उठाना पड़े, उठाया जा सकता है, लेकिन डीजल-पेट्रोल का उपयोग तो कम करना ही है। हम लगातार सरकार से माँग कर रहे हैं कि आप डीजल-पेट्रोल का प्रयोग घटाइए, उसका मूल्य बढ़ाइए, क्योंकि जब डीजल-पेट्रोल का मूल्य बढ़ेगा, तभी सौर ऊर्जा, बिजली की गाड़ियाँ, इथेनॉल या अन्य अनेक प्रकार के विकल्प मजबूत हो सकेंगे। सरकार की चाहे जो भी मजबूरी हो, लेकिन हम लोगों का यह कर्तव्य है कि जो लोग डीजल-पेट्रोल के पक्ष में खड़े हैं, उन्हें समाज बहिष्कृत माना जाए। डीजल-पेट्रोल की गाड़ियों से कुछ आर्थिक लाभ हो सकता है, लेकिन वह एक प्रकार का समाज के खिलाफ षड्यंत्र है। वह श्रम शोषण का एक सुरक्षित मार्ग है। मुझे खुशी है कि पिछले कुछ महीनों से युद्ध की परिस्थितियों को देखते हुए सरकार भी इस दिशा में सावधान हुई है। यद्यपि मुस्लिम देशों के समर्थक अभी भी भारत में इस तरह के षड्यंत्र कर रहे हैं, लेकिन जनमत इस प्रकार के सारे षड्यंत्र विफल कर देगा, मुझे पूरा विश्वास है। मैं भारत की जनता से यह निवेदन करता हूँ कि हम डीजल-पेट्रोल की खपत कम से कम करते जाएँ। यही देश और समाज, दोनों के हित में है।

4 राइट टू रिकॉल समाज का विशेष संवैधानिक अधिकार

हम नई समाज व्यवस्था में जो भी संविधान बनाएँगे, उस संविधान में हम यह प्रावधान अवश्य करेंगे। जो भी इकाई किसी व्यक्ति को पावर देगी, उस इकाई को राइट टू रिकॉल का भी पूरा अधिकार रहेगा। नियुक्तिकर्ता को नियंत्रण का अधिकार होना ही चाहिए। उसकी न कोई समय-सीमा होती है, न कोई विशेष प्रावधान होते हैं। इसलिए हम राइट टू रिकॉल को एक संवैधानिक मान्यता देंगे। उसका कोई तरीका बनाया जा सकता है कि राइट टू रिकॉल सिद्धांत रूप से तो पूरी तरह सही है, लेकिन उसका कोई ऐसा व्यावहारिक तरीका बने, जिससे राइट टू रिकॉल सुविधाजनक हो। लेकिन यह हो ही नहीं सकता कि नियुक्तिकर्ता को नियुक्त व्यक्ति पर नियंत्रण का कोई अधिकार ही नहीं होगा। वर्तमान संविधान को इसीलिए हम लोग गलत मानते हैं, अपर्याप्त मानते हैं, गलतियों का ढेर मानते हैं, क्योंकि इस संविधान में राइट टू रिकॉल जैसी एक साधारण व्यवस्था भी नहीं दी गई है। इसलिए हम राइट टू रिकॉल को अप्रत्यक्ष रूप से समाज का एक विशेष अधिकार मानते हैं। हम इसे संविधान में शामिल करेंगे।

5 पारिवारिक संविधान में स्वतंत्रता और अनिवार्यता का संतुलन

हम लंबे समय से इस बात पर गंभीरता से सोचते रहे कि समाज में बढ़ते स्वार्थ और उद्दंडता पर नियंत्रण में सबसे अच्छी भूमिका परिवार की हो सकती है, लेकिन परिवार का संवैधानिक ढाँचा कैसा हो, इस पर हम कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं निकाल पा रहे थे। कल हम लोगों ने लंबी चर्चा के बाद परिवार के संवैधानिक ढाँचे पर अंतिम निष्कर्ष निकाला है। उसके अनुसार भारत में प्रत्येक परिवार के संविधान में 6 मूलभूत बातें अनिवार्य रूप से होंगी। एक संयुक्त संपत्ति और संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर बने संविधान के अंतर्गत रहने के लिए सहमत व्यक्तियों के समूह को परिवार माना जाएगा। दो इस तरह के परिवार यदि एक साथ मिलकर कोई समूह बनाते हैं, उस समूह को संयुक्त परिवार माना जाएगा। हर परिवार का

एक प्रमुख होगा और हर परिवार का एक मुखिया होगा। प्रमुख के लिए प्राथमिकता अधिक उम्र के व्यक्ति को दी जाएगी। किंतु यदि संयुक्त परिवार होगा, तो मुखिया तो प्रत्येक परिवार का अलग-अलग होगा, किंतु प्रमुख संयुक्त परिवार का एक हो सकता है। प्रत्येक परिवार अपना एक संविधान बनाएगा, जो परिवार के सभी लोग मिलकर सर्वसम्मति से बनाएँगे। यह संविधान ऊपर की इकाई के पास रजिस्टर्ड होगा। किंतु संयुक्त परिवार होगा, तो संयुक्त परिवार का एक संविधान हो सकता है, जो संयुक्त परिवार के सभी लोग मिलकर बना सकते हैं। परिवार के प्रमुख और मुखिया के अधिकार, दायित्व, कर्तव्य, सीमाएँ, परिवार की चुनाव-पद्धति, कार्यप्रणाली—सब परिवार के संविधान के अनुसार होंगी। प्रत्येक परिवार अपना संविधान बनाने के लिए स्वतंत्र होगा। ऊपर की इकाई में रजिस्ट्रेशन परिवार के प्रमुख के नाम से होगा और परिवार का मुखिया उसका संचालन करेगा। संयुक्त परिवार की स्थिति में संचालन के लिए परिवार प्रमुख किसी भी व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। प्रत्येक परिवार अपना-अपना संविधान बनाने के लिए स्वतंत्र होगा, किंतु उसमें उपरोक्त 6 बातें अनिवार्य रहेंगी। आप लोग इस संबंध में अपने विचार दे सकते हैं। हम उन पर विचार करने के बाद अंतिम प्रारूप बनाएँगे और आपको प्रस्तुत करेंगे।

6 महिला-पुरुष और युवा-वृद्ध के विभाजन से समाज में बढ़ता टकराव

वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था ने किस तरह महिला और पुरुष को अलग-अलग वर्ग घोषित करके हमारी सारी समाज व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया है। इसी तरह हमारी संवैधानिक व्यवस्था ने युवक, जवान और वृद्ध के बीच भी टकराव शुरू कर दिया है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में यदि उम्र के आधार पर तीन भाग करें तो 33 तक को युवा, 33 से 66 की उम्र तक को जवान और 66 के ऊपर को वृद्ध माना जाता है। युवा परिवार पर आश्रित होते हैं, सलाहकार तक हो सकते हैं, लेकिन निर्णायक भूमिका नहीं अदा करते। जवान निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। वे युवाओं की भी चिंता करते हैं और वृद्धों की भी चिंता करते हैं। वृद्ध जवानों के सलाहकार हो सकते हैं, आश्रित हो सकते हैं, लेकिन निर्णायक भूमिका अदा नहीं करते। आमतौर पर आदर्श परिवार की भूमिका यही रहती आई है। लेकिन अब हमारी नई संवैधानिक व्यवस्था ने युवाओं को अधिक शक्ति देकर युवा और जवान के बीच में एक नया टकराव पैदा कर दिया है। अब तो कुछ ऐसा दिखाई देने लगा है कि वृद्ध व्यक्ति अब दया का पात्र ही होगा। वह न श्रद्धा का पात्र होगा, न सलाहकार होगा। वह युवाओं और जवानों की दया पर निर्भर करेगा। जवान भी युवाओं से डरकर रहेंगे। मैं मानता हूँ, इसमें कुछ समाज में भी कमजोरी आई थी। उन कमजोरियों को दूर किया जाना चाहिए था, न कि उसे वर्ग-संघर्ष में बदल दिया जाना चाहिए था। हमने आँख बंद करके पश्चिम की नकल की। यह जेन-जी, जेन-अल्फा और ये सब अनावश्यक समाज-तोड़क शब्दों को महत्व दिया। इस पूरे घटनाक्रम में सारी गलती हमारी संवैधानिक और राजनीतिक व्यवस्था की है, क्योंकि इस संवैधानिक व्यवस्था ने परिवार व्यवस्था, धर्म व्यवस्था और समाज व्यवस्था को पूरी तरह राज्याश्रित कर दिया और संवैधानिक व्यवस्था को ही निर्णायक मान लिया। जब संवैधानिक व्यवस्था संप्रभु हो जाती है और अन्य सारी व्यवस्थाएँ गौण हो जाती हैं, तब उसका परिणाम वही होता है, जो आज दिखाई दे रहा है। इसलिए अपनी संवैधानिक व्यवस्था से यह निवेदन है कि आप परिवार, समाज और धर्म—इन सबको सशक्त करो। महिला सशक्तीकरण और युवा सशक्तीकरण बहुत अधिक अराजकता पैदा करेगा। परिवार सशक्तीकरण, समाज सशक्तीकरण और धर्म सशक्तीकरण ही उचित आधार है। यही सोचकर हम सब लोगों ने इस दिशा में नई संरचना शुरू की है। हम अपनी गलतियों को भी दूर करेंगे और वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था से मुक्त होने का भी प्रयास करेंगे।

FCRA का विरोध क्यों? विदेशी हस्तक्षेप से आजादी के बाद अब विदेशी धन से कैसी आजादी?

ज्ञानेन्द्र आर्य

सवाल सिर्फ FCRA का नहीं, भारत के स्वराज का है

भारत ने आजादी केवल इसलिए नहीं प्राप्त की थी कि अंग्रेज चले जाएँ और दिल्ली की कुर्सियों पर भारतीय बैठ जाएँ। स्वतंत्रता का असली अर्थ था कि भारत अपने निर्णय स्वयं करे, अपनी प्राथमिकताएँ स्वयं तय करे और अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दिशा किसी बाहरी शक्ति के दबाव में तय न करे।

इसीलिए स्वतंत्रता आंदोलन में केवल अंग्रेजी सत्ता का ही विरोध नहीं हुआ था, बल्कि विदेशी कंपनियों के आर्थिक हितों और विदेशी राजनीतिक हस्तक्षेप का भी उतनी ही दृढ़ता से विरोध हुआ था। यह विरोध भारतीय राजनीतिक परंपरा का कोई आकस्मिक अध्याय नहीं, बल्कि उसकी नींव का हिस्सा रहा है।

आज लगभग आठ दशक बाद एक बार फिर वही प्रश्न हमारे सामने खड़ा है — और इस बार उसका रूप शासन का नहीं, धन का है।

भारत के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में विदेशी धन की भूमिका कितनी होनी चाहिए?

और इससे भी बड़ा प्रश्न है: जिस विदेशी हस्तक्षेप से मुक्ति के लिए हमने स्वतंत्रता संग्राम लड़ा, उसी विदेशी प्रभाव को

वित्तीय रास्ते से भारतीय समाज और जनमत तक पहुँचने से रोकने की कोशिश का विरोध आखिर क्यों?

FCRA आखिर है क्या? Foreign Contribution (Regulation) Act यानी FCRA कोई अचानक पैदा हुआ कानून नहीं है।

विदेशी अंशदान को नियंत्रित करने वाला कानून पहली बार 1976 में आया था। बाद में 2010 में नया FCRA कानून बनाया गया — और यह उल्लेखनीय है कि उस समय भी कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार ही सत्ता में थी। वर्तमान कानून का घोषित उद्देश्य ही विदेशी योगदान की प्राप्ति और उसके उपयोग को नियंत्रित करना तथा ऐसे उपयोग को रोकना है जो राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल हो। अर्थात मूल सिद्धांत नया नहीं है। विदेशी पैसा भारत में आएगा तो भारत सरकार यह जानना चाहती है कि वह पैसा किसका है, किस उद्देश्य से आया है और कहाँ खर्च हो रहा है। दुनिया के किसी भी संप्रभु राष्ट्र के संदर्भ में यह मांग अस्वाभाविक नहीं है।

2026 में विवाद इतना बड़ा क्यों हो गया?

25 मार्च 2026 को FCRA Amendment Bill लोकसभा में पेश किया गया। प्रस्तावित बदलावों में विदेशी धन से बनी संपत्तियों और संगठन का FCRA पंजीकरण समाप्त होने या नवीनीकरण न होने जैसी परिस्थितियों में उनके प्रबंधन के लिए Designated Authority की व्यवस्था का प्रस्ताव है।

यही प्रावधान विवाद का बड़ा कारण बना। विपक्ष और कुछ नागरिक संगठनों का आरोप है कि इससे सरकार को अत्यधिक अधिकार मिल जाएंगे। दूसरी ओर सरकार का तर्क है कि विदेशी धन से बनी संपत्तियों और उनके उपयोग को लेकर कानून में स्पष्ट और प्रभावी व्यवस्था आवश्यक है।

आखिरकार 12 अगस्त को विधेयक को संयुक्त संसदीय समिति के पास भेज दिया गया। इसका अर्थ यह भी है कि अभी अंतिम कानून सामने नहीं आया है। इसलिए बहस होनी चाहिए, संसदीय जांच होनी चाहिए और आवश्यक सुधार भी होने चाहिए।

लेकिन एक सवाल फिर भी अपनी जगह खड़ा है।

विदेशी धन से आंदोलन क्यों?

मान लीजिए किसी गाँव में पानी की समस्या है। गाँव के लोग चंदा करें, श्रमदान करें और आंदोलन खड़ा करें।

मान लीजिए किसी जिले में विस्थापन का प्रश्न है। वहाँ के लोग अपने संसाधनों से संघर्ष करें। किसी शहर में प्रदूषण की समस्या है। वहाँ के नागरिक मिलकर आवाज उठाएँ। यह लोकतंत्र का स्वाभाविक तरीका है। फिर सवाल यह है: जब किसी विषय को वास्तव में भारत के लोगों की चिंता माना जा रहा है, तो उसके लिए विदेशी धन की आवश्यकता क्यों पड़ती है? क्या भारत के करोड़ों नागरिक अपने लोकहित के आंदोलनों को वित्तपोषित करने में सक्षम नहीं हैं? क्या लोकतांत्रिक आंदोलन की शक्ति विदेशी अनुदान से आती है या जनता के समर्थन से?

और यदि कोई संस्था विदेश से पैसा लेती है, तो उससे यह पूछना कि पैसा कहाँ से आया, किस उद्देश्य से आया और कहाँ खर्च हुआ — क्या यह वास्तव में लोकतंत्र विरोधी मांग है, या लोकतंत्र की रक्षा का न्यूनतम तकाजा?

केवल NGO का सवाल नहीं है

FCRA की बहस को अक्सर "सरकार बनाम NGO" तक सीमित कर दिया जाता है। यह नजरिया अधूरा है।

जनमत और चुनाव को प्रभावित करने की क्षमता केवल गैर-सरकारी संगठनों तक सीमित नहीं है। ट्रस्ट, सामाजिक संगठन, मीडिया घराने और विचार निर्माण करने वाली संस्थाएँ — ये सभी उतनी ही गहराई से जनमत, सार्वजनिक विमर्श और नीति निर्माण को प्रभावित कर सकते हैं जितना कोई सीधा राजनीतिक हस्तक्षेप। इसलिए यह तर्क कमजोर पड़ जाता है कि केवल विधायक, उम्मीदवार, न्यायाधीश या सरकारी कर्मचारी ही विदेशी प्रभाव के लिए संवेदनशील पद हैं। यदि विदेशी धन किसी आंदोलन, किसी मीडिया मंच या किसी विचार-निर्माण संस्था के माध्यम से जनमत को प्रभावित कर सकता है, तो निगरानी का दायरा भी उतना ही व्यापक होना चाहिए।

लोकहित और विदेशी हित में अंतर कौन तय करेगा?

कोई विदेशी संस्था भारत में शिक्षा के लिए पैसा देती है। दूसरी स्वास्थ्य के लिए, तीसरी पर्यावरण के लिए, चौथी मानवाधिकार के लिए, पाँचवीं किसी सामाजिक आंदोलन के लिए। इनमें से बहुत-से कार्य वास्तविक रूप से उपयोगी भी हो सकते हैं। इसलिए हर विदेशी सहायता को देशविरोधी कहना गलत होगा — यह अंध-समर्थन नहीं, बल्कि सिद्धांत आधारित आलोचना होनी चाहिए।

लेकिन यह मान लेना कि विदेशी धन के पीछे कभी कोई रणनीतिक, वैचारिक या राजनीतिक हित हो ही नहीं सकता, यह भी भोलेपन की सीमा होगी। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में धन केवल दान नहीं होता; कई बार वह प्रभाव का माध्यम भी बन सकता है।

इसीलिए पारदर्शिता आवश्यक है — न आँख मूँदकर स्वीकृति, न आँख मूँदकर अस्वीकृति।

विपक्ष की चिंता भी ईमानदारी से सुनी जाए FCRA को लेकर भारत में विपक्षी दल और कुछ सामाजिक संगठन तीखा विरोध कर रहे हैं। उनकी चिंता को पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि विदेशी धन पर नियंत्रण के नाम पर किसी वैध सामाजिक संगठन को केवल इसलिए परेशान न किया जाए कि वह सरकार की आलोचना करता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर मनमानी भी स्वीकार नहीं हो सकती। असहमति को दबाने के लिए कानून का इस्तेमाल हो, यह किसी भी लोकतंत्र के लिए खतरनाक मिसाल होगी।

लेकिन इसके बाद असली प्रश्न सामने आता है: विदेशी हस्तक्षेप रोकने के नाम पर स्वतंत्रता आंदोलन के मूल

सिद्धांत से हम पीछे क्यों हटें?

यदि विदेशी हस्तक्षेप गलत है तो विदेशी वित्तपोषण पर निगरानी गलत क्यों है? यदि पारदर्शिता लोकतंत्र का मूल सिद्धांत है तो विदेशी धन की पारदर्शिता से डर क्यों? यदि किसी आंदोलन को जनता का समर्थन प्राप्त है तो उसकी वित्तीय ताकत जनता से क्यों नहीं आ सकती? और यदि विदेशी धन लेने वाली संस्था पूरी तरह पारदर्शी है, तो कठोर जांच से उसे भय क्यों होना चाहिए?

एक घटना, एक प्रश्न — निष्कर्ष नहीं

इस बहस के बीच अमेरिका के सांसद Riley Moore ने भारत के प्रस्तावित FCRA बदलावों पर सार्वजनिक चिंता जताई और इसे भारत-अमेरिका संबंधों से जोड़ने वाली टिप्पणी की। यह घटना अपने आप में किसी षड्यंत्र का प्रमाण नहीं है, और उसे उस रूप में पेश करना भी उचित नहीं होगा। लेकिन एक लोकतांत्रिक भारत के नागरिक के रूप में सवाल पूछना हमारा अधिकार है: भारत के भीतर विदेशी धन के नियमन पर अमेरिका के किसी सांसद को चिंता क्यों होनी चाहिए? और यदि अमेरिका अपने देश में विदेशी प्रभाव और विदेशी एजेंटों को लेकर कठोर नियम रख सकता है, तो भारत को अपने सामाजिक क्षेत्र में विदेशी वित्तीय प्रभाव की जांच करने का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए?

यही वह प्रश्न है जिस पर बिना किसी पूर्वाग्रह के, गंभीर चर्चा होनी चाहिए।

सिद्धांत, सत्ता के साथ नहीं बदलना चाहिए

FCRA का इतिहास भी कम दिलचस्प नहीं है। विदेशी अंशदान को नियंत्रित करने वाला कानून 1976 में बना था, और 2010 में कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार के समय ही नया, अधिक कड़ा FCRA कानून लाया गया। इसलिए आज यदि कांग्रेस या कोई अन्य दल FCRA के कड़े प्रावधानों का विरोध करता है, तो उससे यह पूछा जाना स्वाभाविक है: क्या आप विदेशी हस्तक्षेप के सैद्धांतिक विरोधी हैं, या केवल उस समय विरोध करते हैं जब नियंत्रण आपके राजनीतिक विरोधी की सरकार कर रही हो?

यह सवाल केवल कांग्रेस से नहीं है — भाजपा सहित प्रत्येक राजनीतिक दल से है। विदेशी प्रभाव पर सिद्धांत एक होना चाहिए; सरकार बदलने के साथ सिद्धांत नहीं बदलना चाहिए। जो दल आज सत्ता में कड़ाई की माँग कर रहे हैं, कल विपक्ष में होने पर भी उसी कड़ाई का समर्थन करें — तभी यह सैद्धांतिक रुख माना जाएगा, राजनीतिक सुविधा नहीं।

FCRA का विरोध नहीं, उसके दुरुपयोग का विरोध होना चाहिए

विदेशी धन पर नियंत्रण का सिद्धांत और सरकार को असीमित अधिकार देने का सिद्धांत एक ही बात नहीं है।

भारत को ऐसी व्यवस्था चाहिए जिसमें:

विदेशी धन की पूरी पारदर्शिता हो।

धन के स्रोत और उद्देश्य सार्वजनिक हों।

उसके उपयोग का स्वतंत्र ऑडिट हो।

लोकनीति, मीडिया और राजनीतिक गतिविधियों पर विदेशी प्रभाव की स्पष्ट सीमा हो।

सरकार को कार्रवाई का अधिकार हो, लेकिन कार्रवाई न्यायसंगत और अपील योग्य हो।

सभी विचारधाराओं और सभी संगठनों पर कानून समान रूप से लागू हो।

यानी सवाल यह नहीं होना चाहिए कि सरकार को विदेशी धन पर निगरानी करनी चाहिए या नहीं। सवाल यह होना चाहिए कि निगरानी कितनी पारदर्शी, निष्पक्ष और जवाबदेह हो।

असली स्वराज कहाँ है?

हम अक्सर स्वराज को केवल चुनाव और सरकार बदलने तक सीमित कर देते हैं। लेकिन स्वराज का एक अर्थ यह भी है कि देश की सामाजिक दिशा, राजनीतिक विमर्श और सार्वजनिक नीति पर निर्णायक प्रभाव किसका है — भारत के नागरिकों का, भारत के संगठनों का, या उन विदेशी संस्थाओं का जिनके पास भारत से बाहर बैठकर भारत के लिए धन खर्च करने की क्षमता है?

यह प्रश्न किसी एक NGO, किसी एक धर्म या किसी एक राजनीतिक दल का प्रश्न नहीं है। यह भारत की संप्रभुता का प्रश्न है। इसलिए FCRA पर बहस को केवल "NGO बनाम सरकार" या "विपक्ष बनाम सत्ता" बनाना बहुत छोटा नजरिया होगा।

असल बहस यह है:

लोकतंत्र में आंदोलन जनता के पैसे से चलेंगे या विदेशी पैसे से?

भारत के जनमत का अंतिम वित्तपोषक भारतीय समाज होगा या विदेशी संस्थाएँ?

और यदि विदेशी धन भारत की सामाजिक दिशा को प्रभावित कर सकता है, तो उस पर सवाल उठाना लोकतंत्र विरोधी है, या लोकतंत्र की रक्षा?

FCRA Bill पर संसद को गंभीरता से विचार करना चाहिए। सरकार को भी जवाबदेह रहना चाहिए। विपक्ष को भी अपने विरोध का ठोस तर्क देना चाहिए। लेकिन एक बात पर शायद किसी विवाद की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए:

भारत के लोकहित के मुद्दे उठाने की सबसे बड़ी शक्ति भारत की जनता होनी चाहिए।

विदेशी सहायता हो सकती है, विदेशी सहयोग हो सकता है, अंतरराष्ट्रीय अनुभव उपयोगी हो सकता है। लेकिन भारत के भीतर भारत का भविष्य तय करने का अधिकार अंततः भारत के नागरिकों का ही होना चाहिए — क्योंकि जिस विदेशी हस्तक्षेप से मुक्ति के लिए हमने स्वतंत्रता संग्राम लड़ा था, उसी को वित्तीय रास्ते से लौटने देना, स्वराज के मूल सिद्धांत के साथ विश्वासघात होगा।

जीवन पथ

अब आगे...

उसके लिए हम कोई चयन प्रक्रिया तय कर सकते हैं? ....खां कहते हैं।

क्या हम ऐसी कोई नई चयन प्रक्रिया नियुक्त करना चाहेगें जैसे कि भारत का संघ लोक सेवा आयोग व्यवस्था चलाने के लिए ब्यूरोक्रेट चयनित करता है। देश की तमाम व्यवस्था ब्यूरोक्रेसी के हाथों कार्यान्वित होती है और इन लोगों की योग्यता, चयन से पहले भली-भांति परखी जाती है। लेकिन आजादी के बाद लागू की गयी अपनी व्यवस्था के अन्तर्गत देश में वातावरण कितना ठीक हुआ है, इसकी अब हमे व्याख्या करने की कोई जरूरत नहीं बची है! यदि ये योग्यता के आधार पर चयनित लोग अपनी जिम्मेदारी पूरी करते तो देश में इस कद्र अव्यवस्था न फैल पाती!

लेकिन हमे यह भी ध्यान रखना होगा विवेक कि देश की ब्यूरोक्रेसी राजनीतिक व्यवस्था के अधीन काम करती है।

और समाज को हम किसका गुलाम कहेगें अंकल, क्या इन दोनों का?

है तो ऐसा ही विवेक! लेकिन क्या यह कहना ठीक रहेगा? क्योंकि यह व्यवस्था खुद भारत के लोगों ने ही स्थापित की है।

लेकिन यह व्यवस्था समाजशास्त्र के सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है, राजनीतिशास्त्र के अनुरूप है। क्योंकि इस व्यवस्था में शक्ति का अनावश्यक केन्द्रीयकरण होता है। हमे इससे मुक्त होना होगा।

तुम स्थापित व्यवस्था को बहुत गम्भीर चुनौती दे रहो हो विवेक!

मैं केवल और केवल समाज के विरूद्ध राजनीति के षडयन्त्र को चुनौति दे रहा हूँ अंकल। क्योंकि मुझे भूख स्वीकार है लेकिन गुलामी नहीं। आपने व्यवस्था चलाने के लिए किसी नई चयन प्रक्रिया की स्थापना की बात कही है जिसके द्वारा व्यवस्था में केवल निष्ठावान व ईमानदार लोगों का ही चयन हो पाए। इस विषय में मेरा कहना यह है कि व्यक्ति-व्यक्ति का गुण, कर्म, स्वभाव समझने से ज्यादा बेहतर व्यवस्था की नियमावली को ठीक करना है। लोकतन्त्रीय व्यवस्था व्यक्ति की इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि समाज द्वारा स्थापित व्यवस्था की नियमावली के अनुसार कार्य करती है। ठीक व्यवस्था व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध करती है तो गलत या अपूर्ण व्यवस्था उसे पद से प्राप्त शक्ति के दुरूपयोग के अवसर प्रदान करती है। इसलिए मुझे इस विषय में केवल इतना कहना है कि यदि वह चयन प्रक्रिया समाज केन्द्रित व्यवस्था का सृजन करती है तो उसे स्वीकार करने में किसी को कोई हर्ज नहीं होना चाहिए।

लेकिन तुम्हारी अनिच्छा पूर्ण भाषा विद्रोह के भाव प्रकट करती है विवेक। तुम्हें यह तथ्य स्वीकार किए रहना चाहिए कि किसी भी विषय-वस्तु के गुण-दोषों का विश्लेषण करने हेतु पराकाष्ठाओं तक संयम की आवश्यकता होती है।

....इस बार प्रोफेसर श्रीवास्तव, विवेक का मार्गदर्शन करते हैं। वह आगे कहते हैं- तुम समाज के रोग का उपचार खोजने की कोशिश कर रहे हो। यदि तुम संयम की मर्यादा तोडोगे तो सभ्यता के दोषी कहलाओगे।

जी आदरणीय! मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ। ....विवेक। नतमस्तक होकर प्रोफेसर से क्षमा मागता है। ....खां पुनः उससे कहते हैं- यह व्यवस्था गलत है या इसे चलाने वाले लोग गलत हैं, इसके बारे में एकतरफा बात कहना आसान काम है। हम, लोगों की करनी का दोष व्यवस्था के सर पर लगाते हैं, मुझे यह बात नीतिसंगत नहीं लगती है।

यह किसी वस्तुस्थिति के प्रति बनने वाले हमारे दृष्टिकोण पर आधारित प्रश्न है अंकल। मूलतः दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है। भारत के संविधान में राजनेताओं द्वारा समाज की विभिन्न परिस्थितियों के व्यावहारिक अर्थ को मनमाफिक ढंग से खूब तोडा-मरोडा गया है। इस सन्दर्भ के स्पष्टीकरण हेतु हम न्याय शब्द को विषय बनाकर बात करें तो हमारे संविधान मे जनता को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक (देखें संविधान की उद्देशिका) सभी प्रकार का न्याय प्राप्त कराने के प्रति प्रतिबद्धता दिखायी गयी है। देखने में जो बहुत ही आदर्श मसौदा लगता है। लेकिन मैं कहता हूँ कि भारत की जनता अपने संविधान के अन्तर्गत न्याय के दर्शन को ही स्वीकार नहीं कर पायी है। क्योंकि कहीं भी किसी विषय वस्तु के विषय मे न्यायिक प्रक्रिया को अंजाम दिया गया है और वहाँ लेसमात्र भी असन्तुलन रहा है तो हमे समझ लेना चाहिए कि वहाँ न्याय के दर्शन के अनुरूप कार्य नहीं हुआ है। न्याय विखण्डित विषय वस्तु नहीं होती है। इसके बहुत से प्रकार नहीं होते हैं। न्याय की मूल धारणा को विभिन्न प्रकार के नाम से सम्बोधित करके हमने अपनी विधिक संहिता को केवल साहित्यिक अलंकारों से सुसज्जित करने का प्रयास किया है। न्याय का स्वरूप एकीकृत होता है। जैसे कि कोई व्यक्ति सामाजिक ढाँचे में जातिगत तौर पर हेय माना जाता है और संवैधानिक व्यवस्था का ढाँचा उसे उसकी सामाजिक हेयता के उन्मूलन के लिए अन्य की अपेक्षा सरलतापूर्वक आर्थिक सुदृढता के अवसर उपलब्ध कराता है तो इससे उस व्यक्ति को चाहे जितना भी सम्बल मिले लेकिन इससे उसकी मूल समस्या का उन्मूलन नहीं होता है। इसे समस्याओं का विषयान्तरात्मक समाधान कहा जाना ठीक रहेगा। इसका सबसे बडा नुकसान समाज में वर्ग भेद के विकास के रूप में सामने आता है। किसी हेय व्यक्ति को समाज में उसकी हेयता से न उबारना और न उबरने देना न्यायसंगत नहीं है और वह विधिक प्रक्रिया के अनुसार अपनी सामाजिक हेयता का लाभ, आर्थिक अवसर प्राप्त करने के लिए उठाए तो यह भी न्याय संगत नहीं है। लेकिन उसे न्याय प्राप्त होना ही चाहिए! क्योंकि यह उस व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है।